अध्याय - 5

गिरिजाकुमार माथुर का प्रयोगवादी काव्य - शिल्पगत प्रयोग

गिरिजाकुमार माथुरजी का काव्यसंबंधी दृष्टिकोन :-

कवि गिरिजाकुमार माथुरजी की काव्यगत विशेषताओं का स्पष्टीकरण करते समय उनका भावपक्ष कैसा और कलापक्ष कैसा है इन्हीं दो पक्षों का सोदाहरण परिचय कर लेंगे।

डॉ. गुलाबराव ने काव्य संबधी अपना दृष्टिकोन बताते हुअे कहाँ है - " कवि साधारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक भावुक और विचारशील होता है, किंतु वह अपने अनुभव को अपने तक सिमित नहीं रखना चाहता है। वह अपने हृदय का रस दूसरों तक पहुँचाकर उनको भी अपनी तरह प्रभावित करने को उत्सुक रहता है। इसप्रकार काव्य के दो पक्ष होते है - " एक अनुभूति पक्ष और दूसरा अभिव्यक्ति पक्ष इसी को भावपक्ष और कलापक्ष भी कहते है।"[1]

अब हम यहाँ कवि गिरिजाकुमार माथुरजी का काव्य संबंधी दृष्टिकोन देखेंगे।

वैसे देखा जाय तो माथुरजी समालोचक की अपेक्षा कवि ही अधिक है, और प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक अज्ञेय की तरह उन्होंने विस्तारपूर्वक अपनी समीक्षाएँ भी नहीं प्रस्तुत की है, लेकिन 'तार-सप्तक' के वक्तव्य एवं 'धूप के धान', आदि कुछ काव्यसंग्रहों की भूमिकाओं तथा कतिपय प्रकाशित निबंधों में माथुरजी का काव्यसंबंधी दृष्टिकोन अवश्य स्पष्ट हुआ है। सन 1966 के माथुरजी के समीक्षात्मक विचारों का संग्रह " नयी कविता: सीमाएँ और सांभवनाएँ, " नाम से प्रकाशित हुआ है, तथा इस कृति में उन्होंने नवीन काव्यधारा की विभिन्न प्रवृत्तियों का नूतन अध्याय प्रस्तुत किया है। अब हम उनके उपलब्ध साहित्य के आधार पर संक्षेप में श्री गिरिजाकुमार माथुरजी का काव्य संबंधी विचार देखेंगे।

वैसे गिरिजाकुमार माथुरजी को प्रयोगवाद का प्रारंभिक कवि और नयी कविता का निर्माता कहा जाता है। अत: उन्होंने प्रयोगवाद और नयी कविता के संबंध में अपना दृष्टिकोन कई प्रसंगों द्वारा स्पष्ट किया है। सामान्यत: समीक्षकों का कहना है कि छायावादोत्तर काव्य में मनुष्य 'मध्यमवर्गीय हताशा' का प्रतीक बनकर सामने आया। लेकिन प्रयोगवादी समीक्षकों का मत है कि प्रयोगवादी कवियों ने सर्व प्रथम साहित्य में मानवीय विशेषता और

आत्म-विश्वास की विचारों की प्रतिष्ठा की है। कवि माथुर ने भी नया कविता की वर्तमान स्थिति पर विचार करते हुअे कहा है - " सभी पक्षों में इस इकाई का स्वरूप वायवी था एक भावना का सुंदर आभास भर था। और यद्यपि उसके आस-पास बाह्यांतर जैसे कितने ही जैसे कितने ही 'सिद्धांतदर्शो' का जाल बुना गया है फिर भी उसका रूप सद्भावना शुभकामना के स्तर पर ही रहा। वहाँ यह स्पष्ट नहीं हो सका कि मानव असले में किस वस्तु का नाम है, कौन-सा है उसकी स्थिति और मूल्य वास्तव में क्या है, और विश्व संस्कृति के वर्तमान विकास के संदर्भ में उसका भविष्य किस दिशा की और उन्मुख है। " [2]

वस्तुतः प्रयोगवाद ने ही मनुष्य को सर्वप्रथम विवेचना की इकाई के रूप में महत्ता दी है, और माथुरजी का कहना है - " पक्ष निरपेक्षता के नये सामाजिक संदर्भ में अब तक की परिभाषाएँ अपर्याप्त हो चुकी थी। विभिन्न लैसों से देखी हुई आदमी की तस्वीर 'आऊट ऑफ फोकस' हो चुकी थी। आदमी तेजी से बदलता जा रहा था, पर लैस नहीं थे। शुरू में यह आदमी भावनाशील, रोमानी, व्यक्ति के रूप में प्रकट हुआ जो अपनी ऐतिहासिकता और अपने संघर्षो के प्रति जागरूक था। दूसरी और आत्मानुभूति भरे हीरो के रूप में जिसे अपने अहं का प्रथम साक्षात्कार हुआ था। तत्पश्चात सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतीक प्रभु के रूप में और उसी के साथ संक्राति के बीच पडा 'शहीद मसीहा' फिर दृष्टि अधिक विस्तारों में उतरी और आधुनिक युग में मूल्यों के विघटन की समस्या सामने आयी इस बिंदू पर हमने उसे टुटा हुआ, लांछित, पथभ्रष्ट, पराजित और विकृतियों से खंडित पाया है। " [3] इसप्रकार यह स्वीकार किया गया कि यद्यपि आदमी, तुच्छता, क्षुद्रता और विकृतियों के कर्दम में पडा हुआ है। और उसका व्यक्तित्व लघुता से कुंठित हुआ है। फिर भी उसका आत्म सम्मान मरा नहीं है, जीवित है और रह सकता है।

माथुरजी जीवन में आनेवाले जटिल अनुभवों का सहज सरल रूप में अभिव्यक्त प्रदान करना साहित्यकार का मुख्य लक्षण मानते हैं और काव्य के लिए उन सभी पक्षों एवं प्रवृत्तियों के तत्वों को ग्राह्य कहते है। जिनका पथ मानवीयता सामाजिक न्याय तथा जीवन भविष्य की आस्था से होकर आगे जाता है, साथ ही उन्होंने प्रयोगवादी कविता के विषय के संबंध में विचार करते हुए यह कहा है कि - " साधारण वस्तु भी कविता का विषय बन सकती है। इसप्रकार माथुरजी ने 'धूप के धान' के निवेदन में यही कहा है कि - " काव्य साहित्य की सीमाओं का इन नवीन प्रयत्नों से बहुत बडा प्रसार हुआ है, उसके द्वारा नयी दिशाएँ खुली है। जीवन का छोटे से छोटा पक्ष साधारण से साधारण विषय अब काव्य की गरिभा के अयोग्य नहीं रहा।"[4]

सत्य तो यह है कि माथुरजी की विचारधारा अन्य प्रयोगवादी कवियों से बहुत कुछ पृथक है, " और वह न तो नकेनवादियों के समान जटिलता को काव्य का प्राण तत्व मानते है। और

न ही अज्ञेय की तरह उसे कलाकार की विवशता तथा आपद्धर्म के रूप में स्वीकार करते है। इसप्रकार कवि माथुरजी दुरूहता को श्रेष्ठता की कसौटी नहीं मानते और उनका यही कहना है, कि अत्यंत जटिल अनुभवों को अत्यंत सहज, सरल और सर्वमान्य रूप में व्यक्त करना तथा जटिलताओं के मूल-में निहित सार्वजनीन सत्य के सूत्र को प्रकट करना सत्य साहित्य का लक्षण है। साथ ही वह यह भी कहते है कि यदि कवि मानस में जटिलता रही तो उसका प्रभाव अभिव्यंजनो के उपकरणों की अस्वाभाविकता, अपूर्णता, भग्नता और रूप व्यक्तित्व में स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होगा। इसप्रकार भाषा जान बूझकर बिगाडी या गढी हुअी होगी जिसका व्यावाहारिक जीवन से कोई संबंध न होगा, चेष्टापूर्ण लाये हुए निरर्थक बोधशून्य प्रतीक होंगे उपमानों में कोई तारतम्य नहीं होग और छंद के नाम पर भ्रष्ट गद्य भी नहीं मिलेगा।

कवि माथुरजी ने नयी कविता की उपलब्धियों पर विचार करते हुए उसकी माध्यमोपलब्धि को प्रमुख माना है। और ब्राह्यकार की विशिष्टता को नयी कविता में आधुनिकता अभिहित करनेवाला प्रमुख तत्व बतलाया है। साथ ही माथरजी ने नयी कविता को एक सीमातक ही रूपवादी आंदोलन कहना उचित ठहराया है, उनका यही कहना है, - " कविता में ब्राह्यरोपित किसी भी अभिव्यक्ति लय होती है जो उसे रचना प्रक्रिया के अंतसर्भिजश्च क्रम Chain Sequence से प्राप्त होती है। इसके बावजूद माथुर जी अपनी कविताओं में छंद को अनिवार्य मानते है, और उन्होंने अपनी कई कृतियों में मुक्त छंद का सफल प्रयोग भी किया है साथ ही उन्होंने आधुनिकता को युग की चेतना समस्या निकायों में निहित माना है, और उनका यही मत है कि नवीन औद्योगिक युग माँग त्वरित माध्यमों की होने के कारण खंडकाव्य, सांग, कविता और क्रमबद्ध लिरिक को आधुनिक नहीं कहा जा सकता। " [5] इसप्रकार कवि माथुरजी को यही विश्वास है कि नयी कव्विता के माध्यों की उपलब्धि हमारे देश के सामाजिक और आधुनिक औद्योगिक विकास के सहाय्यक है।

गिरिजाकुमार माथुरजी का कहना है कि, " हिंदी कविता के मूल में व्यक्ति को परिभाषित करने का प्रयत्न अभिनिर्विष्ट है, और स्वयं उन्होंने द्विवेदी युग से लेकर आज तक की कविता में व्यक्ति के बारे में जो धारणा हो गयी है, उसे आकलित करने का प्रयत्न भी किया है। उनका विचार है कि मनुष्य को महाकाव्यों में महापुरूष पुनः एक 'टाइप' और छायावाद में अमूर्त व्यापक आत्मा की खंड ईकाई तथा प्रगतिवाद में ढोस धरातल पर स्थित व्यक्ति के रूप में देखा गया। और प्रयोगवाद में समूह व्यक्तित्व के निराकार पुतले की स्थापना पर वह राष्ट्रीय तत्व के अनुकूल नही थी। अतः नयी कविता में मानव ईकाई को केंद्र रूप तथा समाज के व्यापक संदर्भ से युक्त कर रखा गया है। " [6]

इसप्रकार माथुरजी प्रयोगवाद और नयी कविता में अंतर भी मानते है तथा उनका कहना हैं कि - " नयी कविता में एक और सामाजिक दायित्वों की जागरूकता और प्रगतिवादी विचारधारा के पृष्ठ में उदित वस्तुपरक दृष्टि तथा व्यापक मानवीयता दी गई थी। नयी कविता का क्रमशः विकसित स्वर व्यक्ति की पावनता और सामाजिक गरिमा की आशा का ही स्वर है। " [7]

स्वय माथुरजी कवि के आत्म वक्तव्य देने की प्रवृत्ति के पक्ष में भी नहीं है और उनका कहना है कि " नयी कविता में इसप्रकार के वक्तव्यों जैसे मैं कुत्ता हूँ, लाश हूँ, गलितांग हूँ, वमन हूँ, जारज हूँ, फेंका हुआ भ्रण हूँ, शहीद हूँ, खंडीत हूँ, और ओ हे पिता, हे पूर्वज, दर्द, दर्द, दर्द आदि की अधिकता रही है। इसीलिए वह मानते है कि 'पहले तो स्टेटमेंट कविता नहीं हो सकती। फिर यदि स्टेटमेंट यह हो कि मैं खंडित हूँ, भग्न हूँ, लाश हूँ, तो उसका उत्तर यह होगा, ठीक है होंगे आप अपने को जो चाहे समझे दुनिया को उससे क्या लेना देना है। " [8] इस प्रकार कवि माथुरजी मन को अधिक पैना रखकर सूक्ष्म अनुभूतियों के स्तर पर वस्तुस्थिति को पकडना आवश्यक समझते है जिनसे मन में असंख्य आयामों के भावांदोलनों को अभिव्यक्ति में उतारा जा सकता है।

कवि माथुर ने यह भी स्वीकार किया है कि प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता एक ढाँचे में बँध सी गयी है, और यही कारण है कि उन्हें अब यह आभास होने लगा है कि जैसे यह सारी सैंकडो कविताएँ एक ही कवि की लिखी हुई है, सिर्फ लेखकों की जगह कुछ, काल्पनिक नाम गढकर रख लिए गए है जो अदल-बदलकर छपते रहते है। इसका कारण यह है कि अधिक तर कविताओं में प्रतीक उपमान, शब्दावली, कथ्यशैली, ॲटोमेंटिक ढंग से युक्त प्रचलित सत्य वचन जैसे दर्द मूल्य, कुंठा, प्रभु आदि पौराणिक या भारतकालीन संदर्भ। यहाँ तक कि शीर्षक छपने का ढंग और पढने का दर्द भरा अफदर्दी, रोमानी तरीका भी एक-सा हो गया है। " [9]

इसप्रकार श्री गिरिजाकुमार माथुर हमारे सामने एक निर्भीक एवम् स्पष्टवादी विचारक के रूप में आते है और हम उनके इन विचारों को ध्यान में रखकर उनकी काव्यगत विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

कवि माथुरजी की भावाभिव्यक्ति और रस योजना :-

सामान्यतः किसी भी कवि की भाव व्यंजना पर विचार करते समय भावों से हमारा तात्पर्य, रीतिशास्त्र के रस पोषक भावों से रहता है। अर्थात उनी भावों पर प्रकार डाला जा सकता है, जो रस परिपाक में पूर्ण रूप से समर्थ है। लेकिन गिरिजाकुमार माथुरजी को प्राचीन परंपरा माननेवाले कवि नहीं समझना चाहिए सत्य तो यह है, कवि माथुरजी प्राचीन परंपरा के विरोधी

है और अपने साहित्य में नये-नये प्रयोग ही उनका प्रमुख लक्ष्य रहा है। वैसे वे प्रबंधकार के रूप मे हमारे सामने नहीं आते उन्होंने तो बहुत सारी कविताएँ मुक्त काव्य रचना में ही लिखकर अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि माथुरजी काव्य में किसी विशेष रस या अलंकार की योजना करना ही कवि धर्म मानते है। और शास्त्रीय दृष्टि से अगर उनके काव्य में विविध रसों का खोजना चाहे तो वह उपयुक्त नहीं होता। इसतरह हम पहले कवि माथुरजी के विविध काव्य प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए उनके भावधारा को स्पष्ट करेंगे।

कवि माथुरजी की काव्य-प्रवृत्तियों का अध्ययन करते समय हमारा लक्ष्य सर्वप्रथम इस ओर जाता है कि 'तार-सप्तक' के कवियों में दुराग्रह से मुक्त सहज और संवेदनशील कवियों में गिरिजाकुमार माथुरजी का नाम सर्व प्रथम लिया जा सकता है। अपना कवि जीवन उन्होंने ब्रजभाषा में शुरू किया था। और नयी कविता मुख्य आधार स्तंभ है, नयी कविता में स्थान-स्थान पर प्रणय, सौंदर्य, संवेदन, रस, रंग और रूमानी प्रवृत्तियों के साथ-साथ सामाजिक विषमता, मानवतावाद आदि अत्यंत पुष्ट भावानुभूति भी उनके काव्य में दिखायी देती है। इसप्रकार माथुरजी की रचनाओं में स्वाभाविक ही विविध काव्य प्रवृत्तियाँ दिखायी देती है। देवेश ठाकुर के मतानुसार - " माथुरजी के काव्य में वैयक्तिक रूमानी भावना और युग जीवन का यथार्थ दोनों प्रकार की अनुभूतियाँ सन्निहित है। अभिव्यक्ति में सहजता, चित्रोवमता तथा शालीनता वह न तो छायावादी काव्य से समान दुरूह और अस्पष्ट है, और न भागवादियों की भाँति एकदम मांसल अन्य प्रयोगवादियों का-सा अभिनव के प्रति दुराग्रह भी उनमें नहीं है, उनकी अभिव्यक्ति रससिक्त बोधगम्य तथा मार्मिक है। जीवन की व्यक्तिगतता और समाज के विषमता दोनों को उन्होंने महत्व दिया है, किंतु अंत में व्यक्ति की अपेक्षा समाज को वैशिष्टय प्रदान करने की प्रवृत्ति ही विशेष रूप से मुखरित हुई है। " [10]

इसप्रकार कवि माथुर अपनी प्रारंभिक रचनाओं मे ही जन-मन से एकरूप होते हुए, एक नवीन रचना की आकांक्षा करते है, और उद्घोषपूर्ण स्वर में कहते है -

" जन-जन का जीवन गीत बने, उठते स्वर का यह गीत नया
हर चरणों की है चाप नयी हर मंजिल का संगीत नया। " [11]

सत्य तो यह है कि माथुरजी की भाव व्यंजना विशद और व्यापक है तथा उनकी काव्य-कृतियों के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपनी राष्ट्रीय एवं मानवतावादी सीमाओं को अधिक से अधिक विस्तृत किया है।

माथुरजी के काव्यसंग्रह 'धूप के धान' मे संकलित 'नयी भारती' कविता मे हमें कवि का

महोदशीय स्वर मिलता है।

" एशिया के कमल पर तुम भारती-सी
पूर्व के जन जागरण की आरती-सी
इस सदी के साथ केसर चरण धरकर
आ गयी तुम भूमि-स्वर्ग सँवारती-सी
अमृत नदियों का जहाँ है सोम संगम
चीन से पाताल तक भूगोल सारा
एक संस्कृति डोर में है बाँध डाला
पूर्व-पश्चिम की समन्वय धूप-सा है
आत्मा के रूप का सौरभ तुम्हारा
विश्व के रस फूल की तुम नागकेसर
तुम अजन्ता-रेख जनगीता नवीना
पोंछती जाओ धरा के आँसुओं को
हाथ में ले सर्व-सुख की रूद्र-वीणा। " [12]

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि माथुरजी की उक्तियाँ भारत या भारती संबोधित कर गयी कविताओं से सर्वथा भिन्न है और हम यह कह सकते हैं कि माथुरजी ही राष्ट्रीय भावना, गहनता और व्यापकता भरी हुई है। माथुरजी की 'अदन पर बमवर्षा' और 'एशिया का जागरण' आदि कविताएँ राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत भरे हुअे है। उनकी 'पंद्रह अगस्त' नामक कविता भी अन्य कविताओं से उच्च कोटी की जान पडती है।

'एशिया का जागरण' कविता में कवि की राष्ट्रीय भावना मार्मिकता से प्रकट हुई है -

हो एक प्राण, हो एक चरण
हो एक दिशा जनता निकली
इतिहास सूर्य के अश्व मुडे
युग जीवन ने कखट बदली
मुखपर मानवता का चंदन
जनता जनार्दन आज बढी
करने आजादी का वदन। " [13]

तो 'पंद्रह आगस्त' कविता के प्रारंभ में ही माथुरजी ने देश के रक्षको को देश की रक्षा के

लिए सतर्क रहने के लिए कहा है। कवि कहते हैं हमें आजादी मिली हो तो भी, कब कैसा संकट आयेगा यह नहीं कह सकते -

" आज जीत की रात है
पहरूए, सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना
उँची हुई मशाल हमारी
आगे कठीन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है। " [14]

कवि माथुरजी की राष्ट्रीय भावना के तरह उनकी सामाजिक विचारधारा में भी नवीनता दिखायी देती है। क्योंकि कवि का भावबोध सर्वत्र नया है। उनका काव्य वास्तविक ही लगता है।

इसी कारण एक और तो इन पंक्तियों में कवि माथुरजी अपनी व्यक्तिनिष्ठता को ढलते और गलते देखते है। तथा उनके असंयभ सपनों की मिठास उस वातावरण में मिटती हुई दिखायी देती है।

" मैं शुरू हुआ मिटने की सीमा-रेखा पर
रोने में था आरंभ किंतु गीतों में मेरा अंत हुआ
मैं एक पूर्णता के पथ का कच्चा निशान
अपनी अपूर्णता मे पूरन
मैं एक अधूरी कथा
है अंत हुआ जाता मेरा
इन अंतहीन इतिहासों में
मैं अनजाना, मैं हूँ अपूर्ण। " [15]

दूसरी और वह आज तक अपनी जिस अपूर्णता के कारण जीवन की समसामायिकता से पृथक रहने के लिए मजदूर किये गये थे, आज उसी अपूर्णता के आधार पर समसामायिकता को देखना, परखना और भोगना चाहता है, और अनुभव भी यही करता है।

" यह व्यक्ति और समाज का
उन्तप्त मंथन काल है
संक्रांति की घडियाँ बनी है श्रृंखला
बंधी हुई है देह
मन को बाँध में बढते पतन के हाथ है,
है फेन विष का फैलता ही जा रहा है।
आलोक हत नक्षत्र मिट्टी से बना
जिसका कि पृथ्वी नाम है। " 16

इसप्रकार माथुरजी की कविता में वैयक्तिक असंतोष का अतिरेक नहीं पाया जाता और न हम उनकी काव्य को पराजय मूल्यों के संक्रमण से ओत-प्रोत ही पाते है। बल्कि हमें तो उनके कविताओं में जीवन को अपनी दृष्टि एवं अपनी बुद्धि के साथ समझने और देखने भावनाओं का दर्शन होता है। साथ ही माथुरजी ने अपनी काव्य पंक्तियों में संक्राति की घडियों के द्वारा यह दिखाना चाहता है कि उससे उन्हें यह दृष्टि मिलती है। जीवन को पूर्व काल्पनिक आदर्शों पर नहीं जीया जाता तो बाहु के बलपर संघर्षों से जुझकर अंधकार को मिटाया जा सकता है। अतः समसामायिकता से उद्‌भूत अनुभूति हमें यह भावस्थिति को स्वीकार कर, जीने का प्रयत्न करें जो हमें वास्तविक और उसके साथ अपना दायित्व क्या है, और उसे निभाने की क्षमता प्रदान कर देता है।

इसप्रकार आधुनिकता और सम सामायिकता के प्रति विशेष आकर्षण होने कारण और सामाजिक दायित्व सं पूर्ण रचनाओं के निर्माण में रूचि रखने के कारण ही कवि माथुरजी की श्रृंगारीक कविता 'चूडी का टुकडा' व्यक्तिगत होते हुअे भी उस साधारण जीवन के निकट है, जो मानवमात्रा में आस्था रखती है। इसीतरह 'प्रौढ रोमांस' यह कवि माथुरजी की प्रसिद्ध कविता सामाजिक की स्वर सुनायी देती है। और उन्होंने सच्चा विरही उसको माना है जो प्रिय की सुधि को मन में रखकर संघर्षोसे खेलता है।

" हम को भी ज्ञान विरह का
और मिलन का
यह मत समझो बरफ बन गया हृदय हमारा
या कालान्तर में पथराये भाव हमारे
पर यह तुमसे बहुत भिन्न है
हम मनमें सुधि रखकर भी

है कर्मशील
है संघर्षो में डूबे भूले
-- आज हमारे संमुख और समस्याएँ है
प्रश्न दूसरे
घर के बाहर के समाज मे। " [17]

'सुधि की पीडा' का यह रूप विरह भावना के क्षेत्र में कवि माथुर की एकदम मौलिक उद्‌भावना है। और सत्य यह है कि माथुरजी के काव्य-कृतियों में सर्वत्र ही भावबोध के नये स्वर दिखाई देते है। लेकिन जीवन सक संपृक्त सामाजिक यथार्थ से संपन्न और जीवन की विषमताओं से संवेदनशील कविताएँ ही उन्होंने बहुत लिखी है। 'शाम की धूप', 'पहिए', 'आग के फूल' और 'नींव रखनेवालो' आदि कविताएँ उल्लेखनीय है। क्योंकि इन कविताओं में माथुरजी ने मानसिक व्यथा और संघर्षो से अधिक महत्व सामाजिक संघर्षो से दिया है। उदा. -

" हमने भी सोचा था पहले इस जीवन में
सबसे अधिक मूल्य होता कोमल भावों का
पर ठोकर पर ठोकर खाकर हमने जाना
मन के संघर्षो से बाहर के संघर्ष अधिक बोझिल है। " [18]

माथुरजी की अनेक कविताओं में मानवीय संवेदना, आस्था एवं आदर्शवाद आदि जीवन-वैषम्य अपनी संपूर्ण समर्थता के साथ व्यक्त हुआ है। इसीप्रकार यह कविता माथुरजी के सामाजिक परिवर्तन आस्था और प्रगतिशील चेतना का उत्तम उदाहरण है। जैसे,

" ये घूम रहे है जीवन के पहिये महान
नभ में ये सूरज, चाँद, सितारों के पहिये
ये शक्तिवान मेहनत की बाँहों के प्रतीक
गढते जाते है जो सामाजिक मूरत को
जीवन की गिट्‌टी को सँवार
सच्चे कर देते है सपने
लेते है स्वर्ग उतार विचारों के नभ में। " [19]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कवि माथुरजी का अनुभव क्षेत्र विस्तृत है, और उनकी दृष्टि भी व्यापक है, उनकी भाव व्यंजना में हमें स्वाभाविक ही विविधता के दर्शन होते है और उनके काव्य में प्रौढता भी दिखायी देती है।

आश्चर्य तो इस बात का है कि, कवि माथुर के काव्य में वैयक्तिकता का बहुत ही मार्मिक चित्रण हुआ है। साथ-साथ सामाजिकता का स्वर भी प्रबल रूप से चित्रित हुआ है। और कही भी अस्वाभाविकता या असफलता का दर्शन नहीं होता। इसीकारण समीक्षक उनके काव्य के बारे में कहते हैं कि माथुरजी ने भाव सौंदर्य ने नए आयामों का स्पर्श किया है, हम देखते हैं कि उन्होंने लौकिक रोमांस का भी सर्वत्र नीवनतम चित्र अभिव्यक्त हुआ है, यह नवीनता कवि माथुर के सर्वप्रथम कविता संग्रह 'मंजीर' की प्रणय संबंधी कविताओं में दिखायी देती है, जैसे -

" गंगा के रेत भरे मरू से किनारे पर
हम तुम मिले थे उस सूनी दुपहरी में
शिशिर क्षणों की उस मीठी दुपहरी में
यौवन के भाग्य से
जीवन के अभाग्य से
तुम थी छिपाये हुए मोह भरी माया एक
उस श्याम जादू की काली-सी छाया एक
सब कुछ समझती थी फिर भी अजान थी
सुंदर दुरावमयी
तुम बडी भोली हो। " [20]

कवि माथुरजी की सौंदर्य भावना भी व्यापक और उदात्त है। उन्होंने अपने काव्य में आंतरिक सौंदर्य का भावपूर्ण निरूपण करने के साथ-साथ बाह्य सौंदर्य का भी कलापूर्ण और आकर्षक चित्रण किया है। इसप्रकार कवि माथुरजी की कविताओं में हमें रूप सौंदर्य के साथ प्रकृति सौंदर्य के भी अनेक अनुपम चित्र दिखायी देते हैं। कवि के शब्दों में -

" पहिले वसंत के फूल का रंग है
गोरे कपालों पै हौले से आ जाती
पहिले ही पहिले के
रंगीन चुंबन की - सी ललाई
आज है केसर रंग रंगे
गृह, द्वार, नगर, वन
जिनके विभिन्न रंगों में रंग गयी
पूनो की चंदन चाँदनी। " [21]

कुछ कविताये ऐसी भी हैं जिनमें केवल वातावरण ही प्रमुख है। प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी वातावरण का चित्रण किया गया है। उदा.- 'कुतुब के खँडहर' कविता की कुछ पंक्तियाँ। जैसे,

" सेमल की गरमीली हल्की रूई समान
जाड़ों की धूपरिवली नीले आसमान में ;
झाडी-झुरमटों से उठे लम्बे मैदान में
रूखे पतझर भरे जंगल के टीलों पर
जिन से अब रोज साँझ कुहरा निकलता था
प्यासे संपनों की मँडराती हुई छाँह-सा। " [22]

गिरिजाकुमार माथुरजी की काव्य कृतियों में अभिव्यक्त विविधमुखी एवं उत्कृष्ट भावधारा के बाद हम रसयोजना की दृष्टि से माथुरजी के कविता का मूल्यांकन करेंगे। हमने पहले ही कहा है कि प्रयोगवादी कवियों की उक्तियों में रस की खोज करना युक्ति संगत नहीं होगा जो कवि परंपरा से विद्रोह कर नीवन प्रयोगों के निर्माता रहे उनके काव्य में शास्त्रीय रसों का निर्वाह कैसे हो सकता है। लेकिन इस का अर्थ यह नहीं है कि प्रयोगवादी, कवियों के काव्य में रस के उदाहरण ही नहीं मिलते प्रयोगवादी काव्य भले ही प्राचीन मान्यताओं के विरोधी रहें लेकिन उनकी कृतियों में प्रसंगानुसार स्वाभाविक ही नवरसों प्रयोग हुआ है। कवि माथुरजी के काव्य कृतियों के भी सर्वथा रसहीन कहना योग्य नहीं होगा।

अगर गहनता से उनके काव्यों का अध्ययन किया तो हमें उनके काव्य में श्रृंगार, शांत, अद्‌भूत, एवं वीर आदि रसों की सफल योजना अवश्य दिखायी देती है। इन रसों के कुछ सुंदर उदाहरण उनकी कविताओं में मिलते है। इतना आवश्यक है कि अद्‌भूत रस प्रायः अंगी रस के रूप में प्रयुक्त हुआ है और वीर रस के भी सभी प्रकारों का अंकन नहीं हुआ है। अतः माथुर की कविताओं में श्रृंगार और शांत रस ही प्रमुखताहा दिखाई देता है। लेकिन श्रृंगार की तुलना में शांतरस का प्रयोग अधिक हुआ है। पर कवि को अधिक सफलता श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति में मिली है। अपनी काव्यधारा के प्रथम चरण से लेकर अंत तक कवि माथुरजी ने प्रणय संबंधी कविताएँ अधिक रची है श्रृंगार के भी संयोग और वियोग दोनों ही भेदों का मर्मग्राही चित्रण करते हुए भी कवि माथुर ने वियोग का वर्णन अधिक मात्रा में किया है। 'चूडी का टुकडा' तथा 'रेडियम की छाया', दोनों में श्रृंगार रस बहुत मात्रा में दिखायी देता है। वैसे 'रूक कर जाती हुई रात', 'भीगा दिन' आदि में भी श्रृंगार रस हमें मिलता है। उदा. -

" बिछुडन की रातों को ठण्डी ठण्डी करती

खोये-खोये लुटे हुए खाली कमरे में
गूँज रहीं पिछले रंगीन मिलन की यादें
नींद भरे अलिंगन में चूडी का खिसलन। "[23]

माथुरजी के काव्य में श्रृंगार संयोग होते हुअे भी वियोग का वर्णन अधिक मिलता है उनके विरह वर्णन में स्वाभाविकता सरसता, नवीनता और अनूठी हृदय स्पर्शिता भी है। जैसे,

" वह चिराग अब नहीं जलेगा
शाम पडी है बहुत सामने
बुझी बिदा की ज्योति किंतु मिलन के जले निशान लिये हूँ
मोती बालू बने उसी सागर का रेगिस्ताय लिए हूँ।
राजमहल तो उजड गया
पर खंडहर में सपने बाकी है।
फूल वहा के नही किंतु फूलों जैसा पासाण लिये हूँ।"[24]

तो दूसरा उदाहरण कवि के शब्दों में

" हो गये हम दूर आपस का
विवश बलिदान देकर,
अलग होकर भी न हो पाई
अलग यादें तुम्हारी
यह वही पथ है जहाँ
हम मिट गये तुमसे बिछुडकर। " [25]

गिरिजाकुमार माथुरजी की कविता का शिल्प विधान :-

प्रयोगवादी कवियों में शिल्पविधान की प्रौढता की दृष्टि से गिरिजाकुमार माथुरजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। माथुरजी को भाव और विचार पक्ष की तरह कला और शिल्प पक्ष भी विकासशील है। माथरजी ने वस्तुपक्ष की महत्ता स्वीकार करते हुए, उसके शैली एवं शिल्प पक्ष को अधिक महत्व दिया है। वे काव्य में विषय से अधिक टेकनीक को महत्व देते है। इस संबंध में 'तार-सप्तक' के वक्तव्य में उनके विचार इस प्रकार है - " कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया है। विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुअे भी मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है। " [26]

इसप्रकार स्पष्ट होता है कि माथुरजी अपने काव्य की यथार्थ विषय वस्तु के साथ-साथ समर्थ टेकनीक के प्रति भी पूर्णत जागरूक है।

कवि गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवादी काव्य धारा के प्रारंभिक कवि माने जाते हैं और डॉ.कैलाश वाजपेयी के शब्दों में - " शिल्प विधि की दृष्टि से प्रयोगवादी काव्य अपने पूर्ववर्ती काव्य की तुलना में अधिक समृद्ध है। छायावादी की अपनी विशिष्ट शैली के ही सामने प्रयोगवाद ने भी प्रगतिशील कविता के समस्त तत्वों को आत्मसात कर कथन का एक विशेष ढंग अपनाया है। जिसे बहुत कुछ अर्शों में प्रतीकात्मक शैली की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। कथन का यह ढंग नवीन होने के कारण ही काव्य के रूपतत्व पर अधिक बल देता है इसीलिए प्रयोगवाद की रचनाओं में प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग अधिक विस्तृत और वैविध्यपूर्ण ढंग पर मिलता है। " [27]

भाषा शिल्प :-

प्रतिभावंत काव्यकल्प के भाषा, अलंकार बिंबविधान, प्रतीक योजना एवं छंद आदि प्रमुख अंग मानते है। इन सबमें भाषा को प्रथम स्थान दिया जाता है। किसी भी कवि की कलागत विशेषताओं का परिचय देते समय सर्व प्रथम उसके भाषा सौष्ठव का ही मूल्यांकन किया जाता है। काव्य भाषा के संबंध में कवि माथुर की जागरूकता वैचारिक एवं रचनातमक दोनों स्तरों पर दिखायी देती है। और स्वयं माथुरजी ने 'तार-सप्तक' के वक्तव्य में यह लिखा है - " रोमानी कविताओं में मैंनं छोटी और मीठी ध्वनिवाले बोलचाल के शब्द प्रयुक्त किये है। रोमानी कविताएँ मैं हिंदुस्थानी भाषा में ही लिखना पसंत करता हूँ। क्लासिकल कविताओं में आर्य गुण लाने के लिए बडी लंबी और गंभीर ध्वनिवाले शब्द रखे है। अभिव्यंजनात्मक शब्द विन्यास वातावरण के रूप भाव के अनुकूल नये बनाये है - जैसे 'पतला नभ', 'सिमटी किरन', 'आदेम छाँह घूमते स्वर' आदि क्योंकि मैं व्यंजना को वातावरण के लघु चित्र अथवा प्रतीक का रूप दे देता हूँ। कहीं - कहीं नये शब्द वातावरण का ध्वनि भाव लेकर बनाये है जैसे 'सूनसान', 'खँडरों' आदि। उदा.- 'सूनसान' शब्द लीजिए। 'शुन्यता', 'सूनापन', 'सूनसान', सभी शब्द उस ध्वनि भाव के साथ निर्बल प्रतीत हुए। शून्य में एक खोखलापन है। 'सूनापन' में दो स्वर ध्वनियों की तेजी के बाद ही अंत की व्यंजन ध्वनियाँ गति को रामाप्त कर देती है। रोक देती है। 'सूनसान' निर्बल है, क्योंकि इसमें केवल एक स्वर ध्वनि है और आरंभ की दो व्यंजन ध्वनियों से शब्द निर्गति है। 'सूनसान' शब्द में 'ऊ' की ध्वनि लंबाई और दूरी व्यक्त करती है 'आ' की ध्वनि विस्तारा बीच में 'न' की ध्वनि सनसनाहट और गहराई व्यक्त करती है। " [28] इसप्रकार सूनसान शब्द का ध्वनि भाग आ ऊँ: ही जाता है जो गहरे सुनसान को यथार्थ रूप है। इसी प्रकार अन्य शब्द भी है। विस्तार के कारण प्रत्येक नये शब्द का अर्थ नहीं दे सकता।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर हमारे समक्ष एक कुशल शब्द शिल्पी के रूप में आते है।

गिरिजकुमार माथुरजी की कविता में भाषा शैली का विकसनशील रूप दिखाई देता है, कवि माथुरजी ने अपना कविकर्म सर्वप्रथम ब्रजभाषा में आरंभ किया था, उन्होंने अपने बाल्य काल में ही अनेक रतिकालीन कवियों का अध्ययन पूर्ण किया थाँ। संस्कृत ग्रंथों और उपनिषदों की अध्ययन से उनकी भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली दिखायी देती है। उन्होंने मैथिली शरण गुप्त, महादेवीजी की भावानुभूति तथा निराला की भाषाशैली ने उनके काव्य शिल्प को प्रभावित किया। निराला की भाषाशैलीने उनके काव्य शिल्प को प्रभावित किया निराला की अनुभूति की गहनता से उद्‌भूत ध्वनि जैसे पाठक का हृदय जित् लेती है। उसी प्रकार माथुरजी की घनत्वपूर्ण शब्द योजना भी उनके गीतों को नई तरह के शिल्प से मूर्त करने में सफल हुई है। आज उनकी रचनाओं में छंदों एवं शब्द शिल्प के जो नये नये प्रतिमान देखने को मिलते है, वे उन्हें आरंभिक जीवन के संस्कार से मिलते चले गये। 1937 में ही कवि माथुर ने भाषा की दृष्टि से छायावादी प्रवृत्तियों का विरोध करके स्वयं को नये धरातल पर लाने का प्रयत्न किया है। उदा.-

" आज मेरे स्वर बनेंगे
सत्य के संदेश वाहक
आज मेरे गीत होंगे
जागरण के रागिनी के। " 29

यहाँ माथुरजी के काव्य भाषा में विकसितता आ गयी 1941 में कवि माथुर का 'मंजीर' नामक प्रथम काव्यसंग्रह प्रकाशित हुआ इसमें 1935 सं 1940 तक की प्रतिनिधि कवितायें संग्रहीत है। इस काव्य संग्रह को कवि के किशोर मन का स्वप्न चित्र कहा जाता है। इन कविताओं तत्सम् शब्द तथा भाव से युक्त कोमल शब्द हमें मिलते हैं। जैसे की,

" अलस चाँदनी यह बिखरी सी
कही गंगा के तट पर
बीती बातों के ध्रुवतारे
खिंच जाती तसबीरें तब
अपने नयनों के मूक मिलन की। " 30

'मंजीर' काव्यसंग्रह की कविताओं में हमें कहीं भी कठीन शब्द दिखायी नहीं देते।

कवि मुख्य उद्देश्य यहाँ यह है कि भाषा माथुरजी की संवेदना की कुशल वाहिका बने और इसी में उसकी सर्वोत्कृष्ठ सफलता है।

1946 में उनका द्वितीय काव्यसंग्रह 'नाश और निर्माण' प्रकाशित हुआ। इन कविताओं में माथुरजी के मन की दोहरा मनस्थिति का चित्रण दिखायी देता है। एक ओर वियोग निराशा तो दूसरी ओर वर्तमान या भविष्य को अपने पौरूष बल पर नया रूप देना। ऐसे मनस्थिति के कारण मनोवैज्ञानी की भाव निर्माण करनेवाली भाषा इस काव्यसंग्रह में अधिक है। उदा. -

" नींद भरी मंदी-सी एक किरन भी
थक कर लौट लौट जाती थी
आलस भरे अँधेरे में
दो काली आँखों-सी चमकीली
सूनेपन के हल्के स्वर-सी। " 31

तीसरा काव्यसंग्रह 'धूप के धान' सन 1955 में प्रकाशित हुआ। प्रयोगवादी काव्यधारा की प्रमुख उपलब्धि यह काव्यसंग्रह है। इस कविताओं की भाषा उल्लेखनीय है। शिल्प के दृष्टि से 'धूप के धान' की रचनाएँ और भी सशक्त है - बिंबों के ऐसे अनेक प्रकार जो हिंदी कविता में पहले कभी प्रयुक्त न हुअे थे, पहली बार इस संग्रह की काव्यों के माध्यम से हिंदी कविता में आये। 'धूप के धान' में संग्रहीत कविताओं की उल्लेखनीय शिल्पगत उपलब्धियों श्रेय कवि माथुर की शब्द योजना को ही है। उदा. -

" यह युग न है भावना का
स्वप्न का या कामना का
रूप रस की कल्पना का
रंग लाती ऋतु हजारों
पर न धरती रंग डूबी
रसवती वह कली खिलती। " 32

1961 के आगे जो 'शिला पंख चमकीले' 1968 जो बँध नहीं सका 'शिला पंख चमकीले' कवि माथुर की काव्य भाषा ने एक नया गोड लिया। आधुनिक काव्य भाषा को विस्तृत और समृद्ध करनें में कवि के शब्द प्रयोगों का एक विशिष्ट योगदान रहा है। कवि प्रथम तो ब्रजभाषा में प्रयोग करते थे। लेकिन शीघ्र ही उन्होंने खडीबोली को अपनाया खडी बोली की

प्रौढ परिनिष्ठित एवं प्रांजल पदावली में अपनी रचनायें प्रस्तुत करने लगे, इसलिए उनकी कविताओं में- " लज्जित, वंशी, पीत, म्लान, प्रवासी, भूमध्यसिंधु, धरा, महाधातु, विशांत, मुह, वक्र, आग्नेय एकांत निस्संकोच, भीम, रत्न, अम्बुधि प्रशस्त, मिथ्या, संघर्ष कंटकित, प्रेत, शाप, सभ्यता, ग्राम, ध्रुव, निधि निष्ठुर कोटि दीप विद्युत, विश्राम, रंजित, रक्तिम, प्रवासी, सुरभित, अग्निशिखा शरत्, विश्व-सभ्यता, जनता जनार्दन प्रकृति, पिशाच्च पशुत्व आदि तत्सम् शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है।" [33]

" इसीप्रकार माथुरजी ने सूरज, सूनी हुज, सुनहली साँझ, सुधि, पंछी, उनींदी, पूरब, धरती, गरम सीतों, सीध, छाँह, क्वाँरी, बाँहि, ओठ, उजली, मुँह बच्चे, अजान, उजियाली, अमराई सपनों, गौरी, नींद, पुस, सुहागिन, कंगन, फागुन, बीज, माटी, दुपहरी, आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग करके अपनी भाषा को सरल सुबोध एवं सुकुमार बनाने का प्रयास किया है। " [34]

" सेलवट, आँजा है, खंजडी, गुपचुप, रास, मचिया, लठ्ठ, बब्खर, चरी औगन, रास, साँवली, बदली, गरमीली, झुरमुठ, भूरे-भूरे पेड आदि देराज शब्दों का प्रयोग हुआ है। "

इतना ही नहीं तो अपने तस्वीर, खूनी, इंसान, सूली, जिंदा मुहर, तूफान, मंजिल, कमजोर, मुल्क, चिंदी, गुलारी, सुबह, आजादी, उम्र, सूरद, मासूम, मनहूस, बियाबाँ, शिकारी, आइना, फसल, सूरतवादे, सहेयाँ, रोज, जल्दी, पूनों, कब्र, आजादी, मशाल, शुद्र, दीवार, कोशिश, जानवर, बेहोश, अजनबी, लहाफ, सफाई, तमाशा, फसलका, याद, दीगर, कागज, जिंदगी, गरमी, मुलायम, नकली, अक्स, वाद-लंबादे, उम्र, तश्तरी, आदि अनेक उर्दू फारसी के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। जो लोकप्रचलित है और जिनका प्रयोग करने से भाषा में सरलता, एवं कोमलता का संचार हुआ है। " [35]

ऐसे ही माथुरजी ने सिल्क, कास, टीन, सिगरेट, पैकेट, टबिल, केतली, फासफोरेस्स शेव, कफ, बटन, मशीन, कोकोजम पार्क, लॉन, अंगरेजी, वियानो, क्रीम, सेंट, मोटार, ममी, रोमाँ, लैडस्केप, रोमांस, मैनहैटन, फ्लैल, ऑटोग्राम, कौलिक, एक्सप्रेस पिरामिड, रिक्कस, रील, सिल्वट, मिल्क, किरासिन, सायकिल, कंकरीट, बूथ, रिक्सा, कैरियर, हैंडिल, रेडियम, स्टीमर, एटम बम, आदि उनके 'न्यूयार्क की एक शाम', 'मैनहैटन', 'न्यूयार्क में काल', 'मिशान की पूर्ना', आदि कविताओं अंग्रेजी शब्द बहुत दिखायी देत है। उन्होंने अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके अपनी भाषा को लोकप्रिय एव युगानुकूल भावों का बहन करने वाली बनाया है। " [36]

लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे का प्रयोग भी उन्होंने अपनी भाषा में करके भाषा को विकसनशील और प्रगल्भ बनाया है।

प्रतिक विधान :-

" वस्तुतः प्रतीक शब्द के कई अर्थ माने जाते हैं। और शब्द मात्र ही प्रतीक है तथा भाषा का प्रयोग ही प्रतीकात्मक है। लेकिन साहित्य जगत में प्रतीक कुछ विशिष्ट अर्थ रखता है। जब किसी शब्द के प्रचलित अभिधेय अर्थ को ग्रहण करते हुए भी उसके द्वारा किसी अन्य अर्थ की सूचना दी जाय तब उसे प्रतीक कहा जाता है। उदा.- सिंह - साहस और शौर्य का, साँप - क्रुरता और कुटिता का तथा भेड कायरता और भीरूता का प्रतीक माना जाता है। " [37]

प्रतिक जीवन में व्यवहार के लिए अत्यंत आवश्यक है। वतुत मनुष्यमात्र का स्वभाव है कि वह अपने भाव के अतिरेक को बाहर प्रकट करने के लिए लालीयत रहता है। हमारे चेतन के भीतर जो उथल-पुथल मच जाती है, वही बाहर हमारे संकेतों, प्रतीकों में प्रकट होती है।

काव्य में प्रतीकों का प्रयोग नयी अभिव्यंजना शक्ति, अर्थ सौष्ठव और लाक्षणिक विशिष्टता लाने के लिए किया जाता है - डॉ. भगीरथ मिश्र के शब्दों में - " अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत भाव वस्तु भाव, विचार, क्रिया-कलाप, देश जाति संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है। तब वह प्रतीक कहलाता है " [38]

प्रयोगवादी कविता में शिल्प का प्रयोग अधिक है। अतः नवीन प्रतीकों का प्रयोग नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। सामान्यतः प्रतीकों को लोक जीवन सें ही लिया जाता है। लेकिन नये कवियों ने नये भावों की अभिव्यक्ति के लिए सामान्य की अपेक्षा विशेष प्रतीको का उपयोग किया है, जिसमें अर्थ की प्रतीति में बांधा पडती है। नयी कविता की प्रतीक योजना के संबंध में गिरिजाकुमार के विचार इसप्रकार है - " सीधे जमें और एक परिचित दायरें में घुमने वाले प्रतीक उपमानों के स्थान पर वस्तु-जगत् के समस्त क्रियाकलापों को उसने (नयी कविता) अपनी वर्द्धमान उंगलियों को छूकर उन्हें ग्रहण किया है, मानसिक जगत की अनेक सुक्ष्म प्रक्रियाओं के पर्दे उठाये है। दैनिक जीवन की सैंकडो छोटी-छोटी घटनाओं के वातावरण और प्रतीकों " [39]

माथुरजी के काव्य में प्रतीकों की विशेषता है। उन्होंने प्रतीकों के नव निर्माण द्वारा अपने काव्य की शोभा बढायी है। उसे अधिक भाव संपन्न बनाया है। माथुरजी के काव्य प्रतीकों का विविध प्रयोग मिलता है। उनके काव्य में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पौराणिक, वैज्ञानिक, अंर्तदृष्टि मूलक, प्राकृतिक, व्यक्तिगत, वास्तविक आदि है।

सांस्कृतिक प्रतीक :-

प्रतीक जो धर्म और संस्कृति से गृहीत किए जाते हैं, उसे सांस्कृतिक प्रतीक कहलाते हैं। माथुरजी ने सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग भी बडी सफलता एवं सजीवता के साथ किया है। जैसे पूजन की झाँझ, देवता, पुजारी देवी, नाश, शाप, वरदान, पुजा के गान, आरती, दीपक, आदि जिनकों अपनाकर कवि के अपनी कविता को रमणीयता प्रदान की है। जैसे -

अ) " कही बहुत ही दूर उनींदी
झाँझ बन रही है पूजन की। " [40]

आ) " पहिले मैं देवता या अब मैं पुजारी हूँ
इतना पतन आज
अब तुम बनी हो सुंदरता की पूज्य देवि
नाश का तुम शाप या वरदान दे दो
आज मेरे पूजनों के गान ले लो
छल किया था आरती मैंने सजाकर
जीत समझी हार के दीपक जलाकर। " [41]

नो कहीं कहीं माथुरजी ने भारतीय संस्कृति और धर्म से ही नहीं विदेशी धर्म और संस्कृति से संबंध प्रतोकों को भी चुना है। उन्होंने मनुसे, ईसा तक के प्रतीकों का प्रयोग किया है, प्रस्तुत उदाहरण में माथुरजी ने महात्मा बुद्ध का धर्मगत चित्रण इसप्रकार किया है।

" जिननें डूबी-डूबी दिखती
ध्यान-मग्न तसबीर बोधितर के नीचे की। " [42]

ऐतिहासिक प्रतीक :-

गिरिजाकुमार माथुरजी की कविताओं में ऐतिहासिक प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। कवि ने ऐतिहासिक प्रतीकों का प्रयोग करके अपनी अभिव्यंजना शैली को अधिक प्रभावशाली बनाया है , जैसे 'कोहिनूर', 'तख्तेताऊस', 'अशोक साम्राज्य' आदि ऐसे ऐतिहासिक प्रतीक है। जिनके प्रयोग से काव्य में विलक्षण चमत्कार की सृष्टि हुई है।

कवि ने कोहिनूर और तख्ततताऊस के ऐतिहासिक प्रतीकों के माध्यम से - काल - विशेष के नहीं तो सार्वकालिक वैभव के विलुप्त हो जाने की बात कही है। जैसे -

अ) " लाल कोहिनूर गिरते मृतिका में
उलटते है एक क्षण में तख्त ताउँसी हजारो। " [43]

आ) " फैलाई थी मिट्टी के अंतर की बाँहे
सत्य और सुंदरता के अविरल संघों से
स्याम, ब्रम्ह, जपान, चीन, गांधार, मलयतक
दीर्घ विदेशों के आशोक साम्राज्यों उपर। " [44]

इसीप्रकार नीचे की पंक्तियों में आए प्रतीक भी इतिहास की एक घटना को ही स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त हुए है। उदा. -

" गोपा के सोते मुख की तसवीर सलोनी
गौतम बनने के पहले किस तरह मिटी थी। " [45]

व्यक्तिगत प्रतीक :-

व्यक्तिगत प्रतीक याने जिनका संबंध कवि की निजी अनुभूति और प्रेरणा से रहता है माथुरजी की काव्य मे वैयक्तिक भावना पूर्ण रूप से मुखरित हुई है।

जैसे पूनो, तारे, नीले उपवन, सपनों के पथ प्रथम दूज आदि ऐसे ही व्यक्तिगत प्रतीक है। जिनकों अपनाकर कविने अपनी अभिव्यक्ति को आकर्षक बनाया है। जैसे -

" पूनो निकल गयी सूनी
तारे है अभी और मिटने को। " [46]

दूसरा उदाहरण -

" आँखों के नीले उपवन में
आँसू सागर के लघुतट पर
आ जाती तुम प्राण सदा ही
चल मेरे सपनों के पथपर
रानी बन कर तुम आयी थी
प्रथम दूज मेरे जीवन की। " [47]

पौराणिक प्रतीक :-

पौराणिक प्रतीक पौराणिक कथाओं पर आधारित होते है। कवि माथुरजी ने पौराणिक

प्रतीकों का प्रयोग करके अपनी कविता को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने का सुंदर प्रयास किया है। जैसे नल-दमयंती, देवदत्त, सिद्धार्थ आदि नामों का प्रयोग करके कवि ने पौराणिक प्रतीकों के द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया है। उदा. -

" सदीयों से बहस छिडी संस्कृति की भूमिपर
खडे हुए मृत्युहीन देवदत्त सिद्धार्थ। " [48]

राम-कथा से संबंधित एक अन्य पौराणिक प्रतीक का उदाहरण जिसमें 'शंभु-चाप' 'लका' आदि शब्द प्रतीक रूप में आये है। जैसे -

" तम डूबे इस यंत्र काल में
आज कोटि युग की दूरी से यादें आती
शंभु-चाप से अविछिन्न इतिहास पुरान
और वज्र-विद्युत से पूरित-अग्नि-नयन वे
जिसमें भस्म हुए लंका के पाप हजारों। " [49]

तो कंस और दुर्योधन को आसुरी, प्रवृत्तियों के प्रतीक रूप में और राम, कृष्ण तथा गौतम आदि को मानवता सात्विक प्रवृत्तियों के रूप में व्यक्त किया गया है। उदा.-

" जले कंस दुर्योधन
यज्ञ महाभारत का
बना शांति का सावन
जब जब इस धरती की
ज्योति थकी मुरझायी
राम, कृष्ण, गौतम औ
गांधी बन उठ आयी। " [50]

वैज्ञानिक प्रतीक :-

विज्ञान की नयी-नयी खोजों से सिर्फ मानव ही नहीं तो कवि लेखक भी प्रभावित हो गये है। माथुरजी के काव्य में वैज्ञानिक प्रतीक दिखायी देते हैं। आज वे यथार्थ सौंदर्य बोध के लिए उन्होंने वैज्ञानिक प्रतीकों का आश्रय लिया है।

माथुरजी की 'आग और फूल' तथा 'पहिए' आदि कविताएँ स्पष्टतः वैज्ञानिक प्रतीकों पर आधारित है। जैसे,

" उठते बगूले दर्द के दुख के यहाँ
हर लहर पर आते नये भूचाल है
उजडा पडा यह द्वीप बिकनी की तरह
फिर - फिर सदा
संघर्ष का अणुबम यहाँ जाँचा गया। " 51

यहाँ गैस, भाप, स्टीमर, बारूद, तथा गोलों आदि वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग कवि ने, 'प्रतिक' रूप में किया वैज्ञानिक उन्नति से किस प्रकार युग जीवन में परिवर्तन आया है - इसका काव्यात्क चित्रण यहाँ किया गया है। -

" अब बढता है सामाजिक चक्र और आगे
युग में है दिखने लगा गैस का उजयाला
चल पडे भाप से नयी मशीनों के पहिये
अंधी लिप्सा वह उपनिवेश हथियाने की
चढ चले जीतने सिंधु भयंकर स्टीमर
बारूद और गोलों के ले काले पहाड। " 52

कवि माथुरजी ने अनादि परब्रम्ह को निर्गुण या संगुन रूप में साकार नहीं किया तो परब्रम्ह को परमाणू के प्रतीक रूप में व्यक्त किया है। देखिए -

" स्वर्ण मुद्राए समेटो
फेंक दो काषाय
क्यों कि अब अव्यक्त, अक्षर
सूक्ष्म, निर्गुण तत्व में
हो गया किशन अणु का
परम ब्रम्ह अनादि मनु का। " 53

यौवन, प्रतीकों और संकेतों का उपयोग :-

'चूडी का टुकडा'ए 'रेडियम की छाया' आदि कविताएँ जिनमें यौवनभावना की अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिक प्रतीकों को अपनाया गया है। 'चूडी का टुकडा' इस कविता में कवि माथुरजी ने मिलन के क्षण का प्रतीक रूप में चित्रण नहीं किया चूडी के टुकडे के माध्यम से कवि ने यथार्थ जीवन की भाषा और उपकरणों से मधुर स्मृतिका ज्यों का त्यों चित्र अंकित कर दिया है।

" पिछली बातें
दूज-कोर से उस टुकडे पर
तिरने लगी तुम्हारी सब लज्जित तसबीरे
सेज सुनहली
कसे हुए बंधन में चूडी का झर जाना
निकल गयी सपने जैसी वे राते
याद दिलाने रहा सुहाग भरा यह टुकडा। " 54

डॉ 'रेडियम की छाया' कविता में सांकेतिक चित्रण द्वारा अलिंगन का संकेत किया है।

" उन्हीं रेडियम के अंकों की लघु छाया पर
दो छाँहो का वह चुपचाप मिलन था
उसी रेडियम की हल्की छाया में
चुपके का वह रूका हुआ चुंबन अंकित था। " 55

परंपरागत प्रतीक :-

परंपरागत प्रतीकों के अंतर्गत ऐसे प्रतीक होते हैं। जिनका प्रयोग एक लंबी अवधि से किसी एक भाषा के कवि करते आते हैं। कवि माथुर ने भी ऐसे ही गंगातर ध्रुव, तारा, वरदान, मंदिर, आदि परंपरागत प्रतीकों का प्रयोग इसप्रकार किया है। -

" कही दूर गंगा के तटपर
फैली सुधि किरणें निखरी सी
लहारों बहतें उतराते
बीती बातों के ध्रुवतारे। " 56

इसप्रकार के सर्वस्वीकृत प्रतीक गिरिजाघरों और मंदिरों पर अक्सर अंकित मिलते हैं। माथुरजी के काव्य में इसप्रकार के प्रतीक इत्र-तत्र बिखरे हुअे है। उदा.-

"रूठ. गये वरदान सभी फिर भी मीठे गान लिये हूँ
टूट गया मंदिर तो क्या पूजा के अरमान लिये हूँ। " 57

प्राकृतिक प्रतीक :-

प्रयोगवादी कवियों सौंदर्य चित्रण, रूप योजना और नयी कल्पनाओं के आयोजन में प्रकृति धर्म

के प्रतीकों का प्रयोग किया है।

कवि माथुरजी ने मिलन के क्षणों का वर्णन करते समय यह संकेत किया है। कि प्रकृति में भी सर्वत्र उल्लास छाया है। उदा.-

" सखी लगता है ऐसा आज
रोज से जल्दी हुआ प्रभात
छिप न पाया पूनों का चाँद
अभी तो झूम रही है रात। " [58]

कवि माथुरजी ने अपनी व्याकुलता का स्पष्ट रूप से न कहकर प्राकृतिक उपदानों का सहारा लेकर व्यक्त करते हैं। देखिए -

" ज्वर सा ठका हुआ वन है
रूकती गिरती दबी पवन है
संधी हुई छाती-सा गहरा
सुप्त निशा का सूनापन है। " [59]

ऐसे ही कवि माथुरजी ने अर्न्त दृष्टि मूलक प्रतीकों का प्रयोग भी बडी कुशलता से किया है। जैसे- मन में कोटि दीपों का जलना, यौवन में मेरू का तपना, रस बरसाने वाले जीवन में विष छोड जाना कहकर कविने दीप, गरू आदि विष का प्रयोग द्वारा अंर्तदृष्टि मूलक प्रतीकों की बडी राजीवता के साथ अपनाया है। जैसे -

" कोटि दीप जलते थे मन में
कितने मरू तपते यौवन में
रस बरसाने वाले आकर
विष ही छोड गये जीवन में। " [60]

बिंब विधान :-

बिंब अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का पयार्यवाची शब्द है। हिंदी आलोचना में शुक्लजी के द्वारा सर्वप्रथम बिंब का प्रयोग हुआ और काव्य में प्राकृतिक हृदय के अंतर्गत इसकी विवेचना की गई। हिंदी में सर्वप्रथम यह रूपविधान और चित्रविधान की समकक्षता की कोटिका माना गया। रूप और चित्र के लिए नया शब्द ग्रहण हुआ 'बिंब'। [61]

बिंब मनुष्य के विभिन्न इंद्रिय-संवेदन के अनुभवों पर आधारित है। किसी वस्तु

अथवा घटना को देखने पर उसका जो चित्र मन पर अंकित हो जाए, उस मानस चित्र को रूपक आदि की सहायता से अभिव्यक्त करना बिंब कहलाता है। क्योंकि इसका बाहय रूपाकार बिंब योजना पर आधारित है। बिंबों का विषय-वस्तुसे घनिष्ठ संबंध रहता है। इसीकारण काव्य में स्पष्टता, संक्षिप्तता और चित्रात्मकता का समावेश होता है। नयी कविता यथर्थ जीवन पर आधारित है। अतः नये कवियों ने मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों से तथा सामाजिक परिवेश से बिंब ग्रहण किए गए है। " 62

श्री माथुरजी एक सिद्धहस्त कवि है और उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को अधिकाधिक मार्मिक एवं मनोरंजक बनाने के लिए जहाँ विविध प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। वहाँ अपनी उक्तियों को गुरूता, गंभीरता, कमनीयता, अलौकिकता एवं मधुरता प्रदान करने के लिए विविध प्रकार के बिंबों - ऐंद्रिय बिंब, वस्तुपरक बिंब, भाव बिंब और आध्यात्मिक बिंब का प्रयोग अत्यंत सफलता एवं सजीवता के साथ किया है, वस्तुतः बिंबों के क्षेत्र में माथुरजी अन्य नये कवियों की तुलना में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते है। उनके बिंबों में जो बँधाव है, जो गति प्रवाह और औचित्य है, वह न तो धर्मवीर भारती के बिंबो में हैं न अज्ञेय के बिंबों में है, नीचे दिये हुए उदाहरणों से यह सत्यता पटता है।

ऐंद्रिय बिंब :-

इसके अंतर्गत माथुरजी ने दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य और आस्वाद्य इन पाँचों प्रकार के बिंबों का प्रयोग बडी सफलता से हुआ है।

कवि माथुरजी ने रात्रि के अंतिम प्रहर को नेत्रों के समक्ष मूर्तित किया है। जो तारे रात्रिभर सोने की तरह जगमग थे, वह कुछ कुछ प्रकाश के कारण धुँधले हो गए है। ऐसे लगते है। रातभर जागने के कारण उनके पलके भारी हो गये है। यहाँ कवि माथुरजी ने बिंब को रंगों के माध्यम से नेत्रग्राही बनाया है तथा तारों का मानवीकरण भी किया है। उदा. -

" रूक कर जाती हुई रात का
अंतिम छाँहो-भरा प्रहर है
श्वेत धुएँ से पतले नभ में
दूर झाँवरे पडे हुए सोने-से तारे
जगी हुई भारी पलकों से पहरा देते

नींद भरी गंदी बयार चलती है
भोर के सपने देख रहा है अब भी
थकी हुई रंगीनों में डूबा प्रकाश अब भी दिख जाता
रेशम - पर्दो, सेजो, निद्राभरे बंधनों की छाया-सा। "63

'न्यूयार्क में फॉल' कविता में बरसात के पश्चात फाल के मौसम की मनोरम छबि प्रस्तुत की गई है। नाबलेक से पारझीने, मौसम का एक दृश्य बिंब देखिए -

" थम गयी बरसात नभ
आ गयी है, नायलॉन सा पारझीना
यह खुला मौसम
मनोरम फॉल का मौसम
समुद्री हवा पर उडता हुआ। " 64

माथुरजी ने 'धूप के धान' सदृश्य सूक्ष्म एवं आकारहीन पदार्थ को मनुष्य जैसा आचरण करते अंकित किया है, जो सुंदर दृश्यबिंब प्रस्तुत किया है। उदा. -

" कंटकित बेरी करोंदि, गहकते है झाब झोरे
सुन्न है सागौन बन के कान जैसे पात चौडे।
दूह टीले, टैरियों पर धूप सूरवी घास भरी
हाड, टूटे देह कुबडी, चूप पडी है गैल बूढी। " 65

श्रव्यबिंब :-

श्रव्यबिंब का निर्माण ध्वनि परक शब्द चित्रों द्वारा होता है, इसे नाद का बिंब भी कहा जाता है इन पंक्तियों में वंशी, मृदंग आदि के उल्लेख मात्र से श्रव्य बिंब का विधान मानागया है, पर संपूर्ण वातावरण ही नादमय हो गया है। जैसे -

" वंशी में अब नींद भरी है
स्वरपर पीत साझ उतरी है
बुझती जाती गूँज आखिरी। " 66

इन पंक्तियों में निर्जन स्थान में गूँजने वाली झींगुरों की झंकार के लिए झाँझ के नाद का कविने प्रयोग किया है। उदा. -

" सनसनाती साँझ सूनी

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

वायु का कठला खनकता
झींगुरों की खंजडी पर
झाँझ सा बीहड झनकता। " 67

स्पर्श बिंब :-

स्पर्श का बोध स्पर्श करनेवाली वस्तु के आकार और उसकी प्रकृति पर निर्भर होता है। उदा.- माथुरजी की एक कविता का उदाहरण " उजली बाँहों-सी दीवारें नहीं। "

" उनली बाँहों सी दीवारे नहीं सिमेट
और याद यह आता संध्या की बेला में
यह एकांत यकान
और उजली बाहों सी यह दीवारें
नहीं समेट पार ही मुझको
और न दिनभर की थकान को मिटा रही है
निरसंकोच लिटाकर अपनी
छत सी खुली हुई छातीपर। " 68

जाडों की धूप एवं सेमल की हल्की रूई दोनों में ही स्पर्श का हल्का-हल्का ताप है। जाडों की धूप में सेमल की रूई में स्पर्श की सुखदता विद्यमान है।

" रानिवासों की नंगी बाहों-सी रंगीनी
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की
फीकी पडतो गई अचानक। " 69

घ्रातव्य बिंब :-

गंध चेतना को जागृत करने वाले बिंब भी माथुरजी के काव्य में प्रचुर रूप में मिलते है। उदा.-

" उडती भीनी गंध हवा में दूब की
बिखरा सोई कोरे कुंतल कामिनी। " 70

इसीप्रकार सफल घ्राण-बिंब का उदाहरण 'लैंडस्केप' कविता में मिलता है। गीले खेतों से आती हुई मंद हवाओं में मीठी हरियाली खुशबू का एक बिंब देखिए -

" इस धूसर साँवर धरती की सोंधी उसाँस
कच्ची मिट्टी का ठण्डापन
मटयाला-सा हलका साया
तन मन में साँसो में छाया
जिसकी सुधि आते ही पडती
ऐसी ठण्डक इन प्राणों में
ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है
मीठी हरियाली-खुशबू मंद हवाओं में। " 71

आस्वाद बिंब :-

" कैसे पीक कर खाली होगी
सदा भरी आँसू की प्याली। " 72

रंगो द्वारा :-

प्रयोगवादी कवियों ने बिंब की सृष्टि में रंग का अत्याधिक प्रयोग किया है। माथुरजी ने रंगों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है - " वातावरण-चित्रण के डिटेल में मैंने रंगों का आधार विशेष रूप से रखा है। किंतु मैं चित्र को सदा हल्के रंगों की छाँहों के आवरण में लिपटा पसंत करता हूँ। क्योंकि यथार्थ चित्रण के सभी डिटैल मैं कला की दूरी से देखता रहा हूँ मेरा यह विश्वास है कि अत्याधिक गहरें रंगों का प्रयोग कला में प्राचीनता (मैडीकल ट्रेट) का द्योतक है। क्लासिकल विषयों पर गंभीर शैली में लिखी कविताओं में मैंने गहरे रंग प्राचीनता लाने के लिए रक्खे है। " 73

अतः हलके रंगो द्वारा ही इन कवियों ने बिंब उभारने का प्रयत्न किया है। उदा.-

" आज है केसर रंग रंगे बन
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली-कली-सी
केसर के वसनों में छिपा तन
सोने की छाँह-सा
बोलती आँखों में।
पहिले वसंत के फूल का रंग है। " 74

अलंकृत बिंब :-

इस बिंबों में अनुभूतियों की अपेक्षा अलंकरण की ही प्रधानता रहती है। अलंकारों

की अपेक्षा अलंकरण की ही प्रधानता रहती है। अलंकारों की योजना से बिंबों का अनुपम सौष्ठव प्रदान किया है। प्रिया के रूप सौंदर्य का चित्रण कवि ने कलात्मक ढंग से किया है। देखिए -

" देह कुसुमित मृणाल
जैसे गेहूँ की बाल
जैसे उचकोहे बारों से
रोमिल रसाल
कसम से उर प्रियाल। " 75

मूर्त का अमूर्त बिंब विधान :-

मूर्त पदार्थों के लिए अमूर्त उपमान की स्थापना कर प्रयोगवादी कवियों ने मूर्त के अमूर्त बिंब प्रस्तुत किये है। मूर्तता के अभाव में इस प्रकार के बिंब धुँधले एवं अस्पष्ट ही रहते हैं। माथुरजी के काव्य में ऐसे अनेकों बिंब प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

कुहरा दृश्य पदार्थ है, लेकिन उसका प्यासे सपनों की छाँह से सादृश्य स्थापित कर उसको अमूर्त रूप देकर अस्पष्ट एवं धुँधले बिंब काही निर्माण कहा जायगा। उदा. -

" जिनसे अब रोज साँझ कुहरा निकलता था
प्यासे सपनों की मँडराती हुई छाँह-सा। " 76

इसी तरह वस्तुपरक बिंब की विविध प्रकार के होते हैं। सर्वप्रथम उन्हें दो भागों में विभाजेत किया जाता है - मानव संबंधी और प्रकृति संबंधी। मानव संबंधी बिंबों के अंतर्गत रूप सौंदर्यगत बिंब, सामाजिक, राजनितिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, आर्थिक, व्यावसाहिक, यौन संबंधो, वैज्ञानिक आदि प्रकृति संबंधी बिंबों में जड प्रकृति संबंधी, चेतन, प्रतीकात्म्क आदि आते हैं?

अ) रूपसौंदर्य बिंब :-

" अब सूनी पलकों पर उतरा
वही तुम्हारा सस्मित आनन
वे काली संलग्न सी आँखे
भटकी-भोली-सी नत चितवन। " 77

ब) राजनीतिक बिंब :-

" यह धरती भी है चढी युगों से सूलीपर

है खिंची हिमालय सी बाँहे
दोनों हथेलियों जडी हुई
साम्राज्यवाद की मुहर लगी दो कीलों से
है पर्वत-चरण बँधे नीचे
मुख की मुद्रा है मौन। " [78]

ग) सामाजिक बिंब -

" बीच पेडों की कटन में है पडे दो चार छप्पर
हाँडियाँ, मचिया, कठौते लट्ठ, गूदड मैल बव्खर
राख, गोबर, चरी आँगन, लेज, रस्सी, हल, कुल्हाडी
धुआँ कंडों का सुलगता, भौंकता कुत्ता भिकारी
है यहाँ की जिंदगीभर शाप नला का स्याह भारी?
भूख की मनहूस छाया, जब कि भोजन सामने हो। " [79]

घ) ऐतिहासिक बिंब :-

" नहीं रहे वे महावंश अब
वे कनिष्क से शिलादित्य से नाम हजारों
किंतु तक्षिला, साँची, सारनाथ के मंदिर
और जीति-स्तम्य धर्म के बोल रहें है
जिस सीमा पर पहुँच न पाई हुई पराजित
कुड तोडने की कुर्सेडों की तलवारे
वहाँ विश्व जय हुई प्यार के एक घूँट से। " [80]

पौराणिक बिंब :-

" देवता, गंधर्व, किन्नर
विवश, इंद्र, वरूण, पवन ये
दास रावण के हुए वे.
त्रस्त बंदी, नत नयन थे
राम थे बन में न था
सेना न साथी या सहाय्यक। " [81]

सांस्कृतिक बिंब :-

" नाश का तुम वरदान दे दो
आज मेरे पूजनों के गान ले लो
छल किया था आरती मैंने सजाकर
जीत समझी हार के दीपक जलाकर। " 82

वैज्ञानिक बिंब :-

अ) " एटम और उड्जन बम है नभगामी महलों के करमें
चाह रहें जो सृष्टि धरा को केवल हिरोशिमा कर देना। "83

ब) " चढ चले जीतने सिंधु भयंकर स्टीमर
बारूद और गोलों के काले-पहाड। " 84

चेतन प्रकृति संबंधी बिंब :-

" बज रहे ठंडी सुबह के आठ
दिन भी चढ गया है
उतरती आती छतों से
सदियों की धूप।
उजले ऊन की मृदुशाल पहिने। " 85

जड प्रकृति संबंधी बिंब :-

" नगर भरा है सुंदरता से
उँचे-उँचे चंदन रंग के महल खडे है
फैली है काजल सी चिकनी चौडी सडके
दूर-दूर तक बीच-बीच में मोती के गुच्छों से
गोरे पार्क बने है।
मखमल से है हरी घास के लॉन मुलामय। " 86

भाव बिंब के भी विविध प्रकार के होते हैं। जैसे - चिंता, लज्जा, मोह, प्रेम, वेदना, विस्मय, क्रोध, स्मृति आदि अनेक भाव सौंदर्य बिंब हो सकते हैं।

।) स्मृतिका बिंब :-

" नयन लालिम स्नेह दीपित
भुज मिलन तन गंध सुरभित

उस नुकीले वस की
वह छुवन, उकसन, विभव अलसित
इस अगर सुधि से सिलौनी हो गई है। " [87]

2) वेदना का बिंब :-

" रात हुई पंछी घर आये
पथ के सारे स्वर संकुचाये
म्लान दिया बत्ती की बेला
थके प्रवासी की आँखो में
आँसू आ-आ कुम्हलाये। " [88]

इसप्रकार शुद्ध बिंबोंवालों का भी प्रयोग किया जाता है। जिसके अंतर्गत सेवा, उदासी, थकान, भक्ति, ममता, अभिलाषा, आकांक्षा, लालसा, अनीति, आस्था, लोभ, राग, द्वेष, प्रेरणा आदि से संबंधी बिंब आते हैं। कवि माथुर ने उक्त भावबिंबों का प्रयोग करके अपनी कविताओं को सरस बनाया है।

आकांक्षा, लालसा, दंभ और प्रेरणा के बिंब :-

" मेरे मन में आकांक्षाओं का ढका मौन
निचोडी हुई लालसायें
झींखता दंभ
खुमारी उतरे पर टूटते बंधनवाली
प्रेरणा ज्वलन। " [89]

इसप्रकार कवि गिरिजाकुमार माथुरजी के काव्य में प्रायः सभी प्रकार के बिंब मिलते हैं। कविने अपनी प्रतिभा तथा चित्रात्मक शक्ति के द्वारा अमूर्त वर्ण्य को भी मूर्त साकार और मांसल बना दिया है। और इसका प्रधान कारण है कवि की रोमानी दृष्टि। माथुरजी के बिंब योजना के संबंध में डॉ. नागेंद्र कहते हैं - " गिरिजाकुमार के अंत संस्कार, छायावाद के सूक्ष्म कोमल शत रात रंगोज्ज्वल बिंबों से बसे हुअे है - उनकी काव्य चेतना का पोषण एक ओर प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी के काव्य वैभव से दूसरी ओर अंग्रेजी रोमानी कवियों की चित्रमय विभूतियों से हुआ था। " (४)

छंद विधान :-

प्रत्येक भाषा की अपनी एक शब्द योजना होती है और इसीलिये प्रत्येक भाषा का अपना एक

प्रवाह होता है, भाषा की उसी प्राकृतिक लय में एक विषेश लय की प्राप्ति के लिए जो नाद विधान होता है वही छंद है।

छंद के बारे में कवि सुमित्रानंदन पंत का कहना है - " कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छंद हदकंदन, कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होना है - छंद समस्त भारतीय काव्य के मूलाधार रहे है। उनमें परिवर्तन संशोधन होता रहा है। छंद विहीन काव्य की कल्पना कभी भी भारतीय मस्तिष्क में नहीं आ सकी। " 91

छंदो के प्रती नयें कवियों का दृष्टिकोन पूर्णतः विद्रोहात्मक रहा है। नये कवियों ने छंद की रचना की पूर्व-प्रचलित सभी पद्धतियों को पूर्णतया अस्वीकार करते हुए, अतुकांत और मुक्त छंद के नूतन रचना विधान को स्वीकार किया है।

गिरिजाकुमार माथुरजी के काव्य में छंद संबंधी नवीनता सर्वाधिक उपलब्ध होती है। उन्होंने मुक्त छंद को ही पसंद किया है। उन्होंने छंद के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रयोग किए है। छंदों की स्वाभाविकता और नवीनता के साथ-साथ माथुरजी ने संगीतात्मकता पर भी विशेष बल दिया है। 'तार-सप्तक' के वक्तव्य में उन्होंने छंद संबंधी नवीन विचारधारा का परिचय इसप्रकार दिया है - " मुक्त छंद का मैंने संपूर्ण विधान रचा है मुक्त छंद को दो विभागों में विभक्त किया जाता है - वर्णिक और मात्रिक तथा इनके रूपांतर वर्णिक में मैंने कविता के विराम भी शुद्ध माने है। जब तक वे अनुच्चारित (अन-एक्सेन्टेड) वर्ण पर समाप्त होते हैं। इस भाँति कविता के नियमों को लेकर कितने ही प्रकार का बहुत संगीतमय लिखा है। (आज है केसर रंग रंगे) एक कविता में एक ही प्रकार का मुक्त छंद प्रयुक्त होना आवश्यक समझता है। यदि उच्चरित वर्णविन्यास (सिलबेल) से पंक्ति आरंभ हुई हो तो समस्त पंक्तियाँ उच्चरित से ही प्रारंभ होना चाहिए - पंक्तियों के विरामों की ध्वनि मात्राएँ-पूर्णतः सम एवं शुद्ध होना अत्यंत आवश्यक समझता हूँ। इन नियमों के विरूद्ध लिखा गया मुक्त छंद अशुद्ध मानता हूँ। " 92

मुक्त छंद संबंधी मान्यताओं को माथुरजी ने अपने काव्य में पूरी तरह निभाने की चेष्टा की है। इस प्रयत्न में उन्हें अन्य नये कवियों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। डॉ. शिवकुमार मिश्र के अनुसार - " माथुरजी ने अपने विविध प्रयोगों के बलपर न केवल अपने मुक्त छंद को अधिक सुथरा बनाने में सफल रहे है, अपितु उन्होंने उसे एक सहज संगीतात्मकता भी प्रदान की है। उनका मुक्त छंद चाहे वह कवित्त का आधार लिये हो चाहे सवैय्ये-का चाहे,

गजल अथवा बहर की लय पर आधारित हो, चाहे किसी अन्य लोक प्रचलित माध्यम पर सब में लय का समावेश पूरे आकर्षण के साथ विद्यमान मिलेगा। " [93]

गिरिजाकुमार माथुर ने कवित्त और धनाक्षरी आदि परंपरागत छंदों को तोडने के साथ-साथ उर्दू की 'गजल' और 'बहर' की लय के आधार पर तथा अंग्रेजी छंदों के आधार पर रचना की है। छंद संबंधी नवीन प्रयोगों में उनका 'आज है केसर रंग रंगे बन' सवैये को तोडकर बनाये गये नवीन छंद का उदाहरण सामने रखता है। जैसे -

" आज है केसर रंग रंगे बन
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली सी
केसर के वसनों में छिपा तण
सोने की छाँह-सा
बोलती आँखों में
पहिले वसंत के फूल का रंग है
गोरे कपोलों पै हौले से आ जाती
पहिले ही पहिले के
रंगीन चुंबन की सी ललाई। " [94]

कवि माथुर की छंद साधना में विविध मोड भी स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं। माथुरजी के बचपन से ही यह प्रवृत्ति से लयात्मक रही है।

बचपन में जब उन्हें प्यास लगती थी, तब वह पानी के साथ-साथ अपनी अभिषाला को रेल की छक-छक को लयात्मक ढंग पर इसप्रकार दोहराता था।

" अरे लबालब
अरे तलातल
अरे तलातल
अरे लबालब। " [95]

कवि माथुरजी को अपने कवि जीवन के प्रारंभ में ही मुक्त छंदों की निर्मिती में पूर्ण सफलता मिली है। 'मंजीर' से एक मुक्त छंद का उदाहरण -

" पश्चिम के गोधूल गगन में रण की काली आँधी
जिसकी लंबी छाया
अपने निर्जल सागर के तट पर आ पहुँची

क्या होगा उनका जिन पर था प्यार हमारा
क्या हो उनका जिनको पूजा को
अपनी विविश गरीबी में भी सब कुछ वारा
यदि आयेंगे अत्याचारी
खँडहर और वीरान बनाने
क्या होगा इन आँखों में रहने वालों का
क्या होगा इन संपन्नों में बसनेवालों का
अपनी कमजोरी की परवशता में
तरस-तरसकर बेबस रह जानेवालों का। " [96]

रूबाइयों का प्रयोग भी माथुरजी की रचनाओं में मिलता है। उनकी रूबाइयों में सामाजिक चेतना और भविष्य के प्रति आस्था की अभिव्यंजना है। इस दृष्टि से 'मिट्टी के सितारे' कविता महत्वपूर्ण है। एक उदा. देखिए -

" कल थे कुछ हम बन गये आज अनजाने
सब दार बंद टूटे संबंध पुराने है
पर दुख का इन्सानी दीपक जलकर कहता
अब ज्यादा देर नहीं है नये सवेरे में
दीपक, तेरे नीचे घिर रहा है अंधेरा
सोने की चमक तले अनीति का डेरा है
इन्सान स्वयं बनकर आ रहा है सवेरा। " [97]

'नये साल की साँझ' कविता में छंद रचना वातावरण के लिए गझल के काल-मान पर गई है। जैसें -

" ये नये साल की
एक और वर्ष की किरन उजल के डूब गयी
उठ रहा है वह नया दूज का चाँद
दूधियाँ चाँद श्वेत हसली-सा
लालिमा साँझ की सिमट गयी। " [98]

लोकगीतों के आधार पर भी छंद योजना उपलब्ध होती है। ऐसे गीतों में लोक धुनों का आश्रय लिया गया है। लोकगीतों में ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित

करने के साथ-साथ रोमानी भावनाओं का प्रकाशन भी सफलता पूर्वक किया है। इस दृष्टि से 'चाँदनी गरबा' लोकगीत महत्वपूर्ण है। उदा. -

" उजला पाख क्वार का फूला कास सा
खिली चँदीली रात कि कली सुहावनी
नरम नखूनी रंग धूले आकाश में
छिटक रही है पूरनमा की चाँदनी। " [99]

'शाम की धूप' में उर्दू की बहर तोडकर उनके कालमान और लय के आधार पर नया मुक्त छंद रचा है।

" चल पडी तेज हवा
बदल गया मौसम
आ गई धूप में कुछ नरमाई
बढ गया दिन का उजेला रास्ता
जिसपै सूरज के चमकते पहिये
शाम को देर तक चले जाते। " [100]

माथुरजी ने अपनी रचनाओं में निम्नलिखित छंदों का प्रयोग किया है, जो परंपरागत छंद है, जो संस्कृत काव्य से यथारूप में ग्रहण किये गये है।

1) पीयुर्ष छंद - लाल आँचल से पसीना पोंछ दो
2) सखी छंद - भूख की मनहूस छाया
3) रोला छंद - हम जीवन की मिट्टी में मिले सितारे है।
4) सार - नई दिल्ली।
5) सरसी - सायंकाल और पंद्रह अगस्त।

माथुरजी ने अनेक मिश्रित छंदों का भी अपने काव्य में प्रयोग किया है।

1) " सिंधु, मानव और सारक
'धूप के उन' शीर्षक कविता में

2) दोहा, गोपी और सरसी
'पंद्रह अगस्त' कविता में

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि माथुरजी ने परंपरागत पुराने कुछ छंदों के योग से नये छंदों का निर्माण किया है। इस संदर्भ में डॉ.शिवकुमार मिश्र ने लिखा है - " माथुरजी के छंद

विधान ने संबंध में यदि कहा जाये कि उन्होंने उसे स्त्रीत्व की सुकुमारता ही प्रदान की है। पौरूष के ओज युक्त प्रवाह की सृष्टि नही की तो कदाचित अत्युक्ति न होगी। इसके लिये उनकी सहज कोमल रूमानी प्रवृत्ति की उत्तरदायी मानी जा सकती है। " 101

संक्षेप में कहा जा सकता है कि माथुरजी ने छंद विधान के क्षेत्र में अनेक मौलिक उद्‌भावनएँ की है। छंद विधान की दृष्टि से नयी कविता में माथुरजी का स्थान अग्रणी है।

माथुरजी की कविता में अप्रस्तुत योजना :-

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य शिल्प में उनके द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों का भी विशेष स्थान है। कवि ने अप्रस्तुतों के चयन में अपनी नवीन मौलिक और यथार्थ की दृष्टि का परिचय दिया है। इनके अप्रस्तुत भावोपम, अर्थगर्भित, मौलिक और नवीन है। यहाँ यह कहना उचित होगा कि कवि माथुर ने अप्रस्तुतों का चयन किया है, बिना सोचे समझे उन्हें इकठ्ठा नहीं किया। ये उपमान धर्म, संस्कृति, कला, संगीत, साहित्य जीवन और प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण से लिये गये है। वर्ण्य भाव को मूर्तित कर आस्वाद्य बनाने वाले ये अप्रस्तुत योजना माथुरजी की व्यापक जीवन दृष्टि और गहन सशक्त को प्रकट करते हैं।

1938 में ही कवि माथुर को नवीन उपमानों के प्रयोग में सफलता मिली है। 'मंजीर' की कुछ पंक्तियाँ -

" अब तो तुम्हारी सुधि
मुझको हुई है हिमालय की लकीर सी
उस दिन की बात जब
उ छये थे धीमे ही
चलने से रेती में
चंचल चुपचाप चरण। " 102

काव्यशास्त्र के अनुसार उपमान प्रयोग के निम्नलिखित चार प्रकार होते हैं -

1) मूर्त का मूर्त के साथ संयोजन
2) मूर्त का अमूर्त के साथ संयोजन
3) अमूर्त का अमूर्त के साथ संयोजन
4) अमूर्त का मूर्त के साथ संयोजन

विचारपूर्वक अध्ययन किया तो माथुरजी के काव्य में उक्त चारों प्रकार प्रयुक्त हुए दिखायी देते है।

1) मूर्त का मूर्त के साथ संयोजन -

अ) " देह पडी रह जाती
खोखले लिफाके सी। " 103

ब) " आज दिखता है दही-सा चाँद शीतल। " 104

2) मूर्त का आमूर्त के साथ संयोजन -

" वही हरेक सनीचर के दिन
हाट लगा करती है
भूतकाल की भटकी हुई आत्मा जैसी। " 105

3) अमूर्त का अमूर्त के साथ संयोजन -

" जिसकी सुधि आते ही पडती
ऐसी ठंडक इन प्राणों पर
क्यों सुबह ओस गीले खेतों आती
मीठी हरियाली खुशबू मंद हवाओं में। " 106

4) अमूर्त का मूर्त के साथ संयोजन -

कही-कही अमूर्त के लिए मूर्त उपमानों का उदाहरण दर्शनीय है -

" टूटती वाणी अकेली
ज्यो अकेली लहर आकर
टूट जाती पत्थरों पर। " 107

इसीप्रकार माथुरजी ने परंपरागत उपमानों के स्थान पर तार्किक दृष्टि से समसामायिक जीवन तथा प्रकृति के उपमानों का चयन किया है सभी उपमानों जो नवीनता है उससे स्पष्ट हो जाता है कि माथुरजी ने कवि परंपरा से कितनी दूर हटकर रचना की है। इसीप्रकार उन्होंने विज्ञानं, पौराणिक, परंपरागत और जीवन के सामान्य क्रिया कलाओं से भी उपमान ग्रहण किये है।

वैज्ञानिक उपमान -

" टूटी हुई देह सी टूटी फूटी बेंचे
जर्जर एनेमिक प्रयासों से
भटके हुए मकान। " 108

प्रकृति उपमान -

वातावरण की सजीवता स्पष्ट करने के लिए भी नवीन उपमानों का प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में माथुरजी ने नूतन उपमानों की सहायता से 'सूनी आधी रात' की अत्यंत मार्मिक किया है। उदा. -

" सूनी आधी रात
चाँद कठोर की सिकुडी कोरों से
मंद चाँदनी पीता लम्बा कुहरा
सिमट लिपट कर। " [109]

पौराणिक उपमान -

पौराणिक उपमानों के प्रयोगों के लिए माथुरजी की 'पृथ्वी प्रियतम' कविता महत्वपूर्ण है। जैसे,

" यह मदन धनुष-सा वंक चंद्र
है पंचकुसुम पंचमी कला
रति के गोरे रोचन तन सी
खिल रही कपूरी चंद्रप्रभा
तुम उतरों धरकर चरण कुसुम
है सृजन-मदन की सुरभि श्वास
आओं है पृथ्वी के प्रियतम। " [110]

परंपरागत उपमान -

परंपरागत प्राचीन उपमानों का माथुरजी ने नया प्रयोग भी किया है 'सावन के बादल' कविता में वर्ण्य साम्य के आधार पर बादलों के लिए 'काले अंगरू' और 'जामुन के रंग' उपमान सार्थक है। उदा. -

" काले अंगरू-से उठे आज बादल
ये मिट्टी की गंध से सोंधी हवाएँ
ये जामुन के रंग सी नीली घटाएँ
उडी आ रही है लहर-सी कुहारे। " [111]

सामान्य जीवन से ग्रहीत उपमान -

सामान्य जीवन के क्रियाकलापों से भी कवि ने उपमानों की संयोजना की गई है। यथा -

" काली चिकणी सडकों की उँची पट्टी पर
बढता जाता वह मशीन सा
चांदी के पहियों पर चलती हुई
मोटरों के स्वर सुनता। " 112

माथुरजी ने उपमानों तथा विशेषणों के अतिरिक्त अलंकारों द्वारा भी अपने काव्य को अलंकृत किया है। कवि ने प्राचीन अलंकारों के साथ-साथ नवीन अलंकारों का प्रयोग करते हुए भाव सौंदर्य की सृष्टि की है। उक्ति सौष्ठव को जन्म दिया है और गहन शिल्प सौंदर्य की अभिव्यंजना की है। आप के प्रायः सभी सादृश्यमूलक अलंकार चमत्कारपूर्ण है जो भावना भावोत्कर्ष में अत्यंत सहाय्यक हुए है।

कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग बहुत जगह किया है। दूज कोर-से उस टुकडे पर, 'सपने जैसी मीठी रात', केसर सी मृदु हीरे सी दृढ, गंगा का अंतर धीरवान, विंध्या की चट्टानों सा है कठोर, हिमालय सी बाँहे कसे धनुष से वक्र ओठ अचल दिपक समान रहना आदि।

पौराणिक संदर्भ से संबंधित कविताओं में अलंकार अनायास ही आ गया है। उपमा अलंकार का एक सुंदर उदाहरण देखिए -

" नंदिनेय रघु से आज जन्में
ज्यों बालेंद्र क्षीर सागर से
रूप क्रांति ज्यो एक दीप से
जलकर पाता दीप दूसरा। " 113

वैसे झाँझ सा बीहठ झनकता, आइनों से गाँव होत, मृत्यु सा बनैला प्रेत, धुले मुख सी धूप यह गृहिणी सरीखी आदि पंक्तियों में उपमा अलंकार का सौष्ठव मौजूद ।

माथुरजी के काव्य में रूपक अलंकार का प्रयोग भी अत्याधिक मात्रा में हुआ है जिससे उनके कथन में विलक्षण चमत्कार के साथ-साथ भाव सौंदर्य की भी सृष्टि हुई है।

जैसे -

अ) " बीत गया संगीत प्यार का
रूठ गई कविता भी मन की। " 114

ब) " रूकता नही कभी गति का पहिया
प्रशिया के कमल पर। " 115

वायु का कटला खनकता, सूर्य के अश्व मुडे, चाँदनी की रैन चिडियाँ आदि पंक्तियों में रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

माथुरजी ने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग द्वारबडी विलक्षण कल्पनायें की है, जिनमें गहन अनुभूति के साथ-साथ भाव सौष्ठव भी विद्यमान है। जैसे -

अ) " अंगार बन गया आदि
पूर्व सदियों का धुँधला जम्बुदीप। " [116]

ब) " उठता है तुफान
इक तुम दीप्तिमान रहना
नभ के खोखल में उल्का बन खो जायेगी। " [117]

" वैसे भूख की मनहूस छाया
जब कि भोजन सामने हो " [118]

जीत समझी हार के दीपक जलाकर आदि पंक्यिों में विरोधाभास अलंकार है। विविध प्राचीन अलंकारों का प्रयोग करके कवि माथुर ने अपनी अभिव्यक्ति को मार्मिक एवं मनोरंजक बनाया है।

जैसे कवि माथुरजी ने प्राचीन अलंकारों का प्रयोग किया है। वैसे ही नूतन अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है, जिसके द्वारा अभिव्यक्ति अधिकाधिक प्रभावोंत्पादक बन गया है।

जैसे चांदनी को एक आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया गया है।

अ) " चाँदनी की रैन चिडिया
गंध फलियों पर उतरती " [119]

ब) " फूले पलाश सी पूनम आई
चाँद के अंग में रैन समाई। " [120]

आदि पंक्तियों में मानवीकरण अलंकार का माधुर्य विद्यमान है। ऐसे कवि माथुरजी ने विशेषण-विपर्यय अलंकार के द्वारा भी अपनी अभिव्यंजना को अधिक मार्मिक एवं मनोरंजक बनाया है। जैसे -

अ) " वंशी में अब नींद भरी है
स्वर पर पीत साँझ उतरी है। " [121]

ब) " दूर उंनीदा झाँझ बजा रही है पूजन को। " [122]

आदि पंक्तियों में विशेषण विपर्यय अलंकार का माधुर्य विद्यमान है, तो चमचमाता चाँद, झंझरियों से झाँकती है, उग्र रहे झलमल, झनकता बीहड, यह झकाझक रातें, आदि पदों में ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार का सौंदर्य विद्यमान है ।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि माथुरजी ने अलंकार योजना द्वारा युगीन संवेदनाओं को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है। समग्र रूप से उनकी उपमान योजना, विशेषण प्रयोग तथा अलंकार योजना, स्वाभाविक सहज-सरल और भाव संवेदनाओं को उभारने वाली है। उनकी सुरूचिपूर्ण अभिव्यक्ति करनेवाली है।

जनभाषा का प्रयोग :-

कवि अपने परिवेश से जुडा रहता है। समूचे संदर्भ इसी समाज से उसे मिलते है। इसी मिट्टी की गंध सामान्य जन की शब्दावली के माध्यम से मुखरित होना स्वाभाविक ही है। उन्होंने "जीवन की भाषा का प्रयोग किया है। दियावरी, ढाकवनी, अभी तो झूम रही है रात आदि कविता में जनभाषा का प्रयोग बहुत हुआ है। जैसे,

" ताड, तेंदू, नीम, रेजर
चित्र लिखी खजूर पातें
छाँह मंदी डाल जिन पर
लाल पत्थर लाल मिट्टी
लाल कंकड लाल बजरी। " [123]

पत्थर, मिट्टी, कंकर, बजरी, ढाक, डाँग, फाग, कजरी, ताड तेंदू, नीम, रेजर आदि शब्द ग्रामीण शब्द है। उदा. -

" बीच पेडों की कटन में
है पडे दो चार छप्पर
हाँडियाँ, मचिया, कठौते
लठ्ठ, भूदड, बैल, बक्खर
राख गोबर चरी आँगन
चका हँसिया और गाडी। " [124]

तो 'दियाधरी' में कविता में असल जनभाषा दिखायी देती है। देखिए,

" धूल-चुनर की लालिमा

बीज कोख में रखनेवाली
लुगडा छापेदार लाल
लहँगा स्याह कमर में पहिने
श्याम बरन की गूजरी। " [125]

उपर्युक्त काव्यपंक्तियों में अस्सल जनभाषा का प्रयोग हुआ है। इसी तरह अपने सिलवट, आँजा है, डगर, पथराये, चबी चबाई, मिठास, डॉग, फाग, कजरी, खंजडी, बीहड, झाब झौरे दूह, टौरेयाँ, गैल, मनहूस, गसा, रैन चिडियाँ, छुलकी, रूंद, रास, गुपचुप, गलियारा, कंजी, मजिया, लठ्ठ, ग्दड,बक्खर, चरी, आँगन, कतोई, ठीकरा, मौथरे, झंझारियाँ, बिस्तर मट्टिम, सौंधी, गंध, डंठल, बयार, संगोली, संतिए-सी घूरी, साँझ बिठलाके, बेबस, हटरी बूँद चआती, सुरमीली आँखे, साँवली, बदली, गरमीली, झुरमुट, भूरे-भूरे पेड, उजड, खंडेरे हौले से खिसल, खिसलचली, ठिठरन, मसली भोर, धुँधला, उस लिए, सीलन, धुँध, धू-धू सुलग उठा, बासी सनसनाती साँझ, छुबन, उकसन, चुमन, सलौनी, गरमाई, बदली, कल्पता, बहाने दिवाला, गुरीला, लौ बौदा, झमक लुगडा, बीजरी, बोर, महक, दाभ, टगर, पुरियाँ, चेवंदर, झुरे झुरिया आँखें आदि बहुत सारे जनभाषीय शब्दों का प्रयोग करके माथुरजी ने कविता को स्थानीय रंग से रंजित करने का सुंदर एवं संजीव प्रयत्न किया है। उन्होंने जीवन व्यवहार की भाषा को अपनाकर काव्य को ताजगी और नवीन शक्ति प्रदान की है।

मुहावरे और लोकोक्ति का प्रयोग :-

लोकोक्ति और मुहावरे भाषा के प्राण होते हैं। इनसे न केवल भाषा में अर्थ गौरव निर्मिती होती है, बल्कि इनसे उक्ति वैचित्र्य का चमत्कार भी उत्पन्न होता है। साथ ही मुहावरे और लोकोक्ति के प्रयोग से भाषा में प्रभावोत्पादकता आ जाती है।

कविवर गिरिजाकुमार माथुरजी ने अपनी कविताओं में लोकोक्ति एवं मुहावरों का भाषिक शक्ति के लिए प्रयोग किया है। इन प्रयोगों से माथुरजी की भाषा प्रभावी कथनों में उक्तिवैचित्र्य और अर्थ गौरव से युक्त हो गई है।

माथुरजी ने अपने काव्य में नये मुहावरे और लोकाक्ति के साथ-साथ पुराने मुहावरों और लोकोक्ति का प्रयोग भी किया है। उनके नये मुहावरे में भावों का स्पंदन है, हृदय की धडकन है और नये शिल्प की भंगिमा है। जैसे, शब्दों में फुंकारना, कसोटियाँ टूटना, मनसांतरंग होना, गुनगुनाकर उठना, शम्भु धनु टूटा, नया सूरज उगाना।

अ) " आलोक कम तम से बचा

वह अग्नि बीजों को सतत बोती रही
फिर से नया सूरज उगाने के लिए। " [126]

आ) " उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहिने थी
रंग भरी उस मिलन रात में
मैं वैसा का वैसा ही रह गया सोचता। " [127]

इ) " दूज कोर से उस टुकडे पर
तिरने लगी तुम्हारी सब लज्जित तसवीरे। " [128]

क) " तन मन की भूख मिटाना
और चौंकों से उठी वह गंध सौंधी
भूख तन मन को मिटा पाती नहीं है। " [129]

ड) हृदय का बरफ बन जाना।
" हमको भी है ज्ञान विरह का और मिलन का
यह मत समझों बरफ बन गया हृदय हमारा। " [130]

जैसे मीठी रातों का निकल जाना, मुहर लगाना, आँखों में आग धधकना, प्रश्न चिन्ह बनकर खडा होना, जड जिंदगी का आना, मजाक बनकर रह जाना, ठंडी साँसों का रह रहकर निकालना, मुँह के उपर हवाइयाँ उडना, खोई-खोई चाल होना, जीवन का निचोड कहना, ठोकर पर ठोकर खाना, तराजू के पलडों में तोलना, प्यार के चाँद का बुझ जाना, हृदय का बरफ बन जाना, भावों का पथराना, किसी की याद सताना, मन का बोझिल होना, मुँह पर उदासी का छाँह का आना, अपने भुजबल से अपना मार्ग प्रशस्त बनना, परिस्थितियों से लडना, जीवन से ढडकर युद्ध करना, मन का बोझिल होना, सूनी साँझ का सनसनाना, भूख की मनहूस छाया होना, सब्ज बाग दिखाना, पाँवों में झुकना पत्थर भी गलकर मोम होना, हृदय वारना, सपनों में बसना, सुलग उठना गति के पहिया कभी न रुकना, कोमल भावों का मूल्य होना, नुकीले सींग चुभाना, नई आब आना दिन का चढ जाना, डेरा जमाना, बेजान मिट्टी का झूमना भारी अधेड से जूझना, उँचा सिर न झुकाना, वन का सुन्न होना, जिंदगी का मिठास रस लेना, दमसाधे मौन चढना आदि।

अभिनव शिल्प :-

गिरिजाकुमार माथुरजी के काव्य में अभिनव शिल्प दिखायी देता है। जिसे माथुरजी ने वैज्ञानिक दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वैसे प्रयोग सभी कवों में होते रहे

है। माथुरजी के काव्य में नवीनता की उद्भावना हो गयी है। प्रयोगवाद की नयी प्रवृत्ति का विकास कार्य में माथुरजी का बहुत बडा हाथ है, उन्होंने जो नवीन साहित्य निर्माण किया, वह अध्ययन से ही प्राप्त नहीं था। तो अध्ययन के साथ-साथ संस्कार भी सहाय्यक थे। अपनी नयी काव्य शिल्पधारा माथुरजी ने वैज्ञानिक चमत्कारों के प्रकाश में मानवता के भविष्य की कलपनाओं को साकार करने का प्रयत्न कवि ने पृथ्वीकल्प के द्वारा किया है।

अप्रस्तुत विधान, बिंब विधान, नव्य शब्द प्रयोग, आदि समस्त क्षेत्रों में माथुरजी के नये प्रयोग मिलते हैं। नव्य उपमान विधान की दृष्टि से 'पहिये' कविता उल्लेखनीय है। इस कविता द्वारा माथुरजी ने मनुष्य को अपने भविष्य के बारे में आशा लगा दी है। कवि कहता है एक दिन जरूर ऐसा आ जायेगा, तब संसार का दुख ही नष्ट हो जायेगा और वहाँ नये समाज निर्माण होगा, जिसमें शोषण, अत्याचार, आदि नष्ट होकर सुंदर मानवता का राज्य आ जायेगा। उदा. -

" मानव का मानव पर
दुख, दोहन अत्याचार
इसलिए कि रूकता नहीं कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
वह पास लिये आता है मनुज समाज नया
जब दुख की सत्ता भर जायेगी। " [3]

बोले वासी फूलों की दुख की सत्ता की उपमा दी है। इस प्रकार का उपमान अन्यत्र नहीं मिलता।

'रेडियम की छाया' कविता का अध्ययन करने पर यह दिखायी देता है कि नवीन उपमानों, नये शिल्प ने एक मादकता और जीवंतता अपना लिया है।

'प्यार बडा निष्ठुर था' यह कविता नवीन उपमान की दृष्टि से पूर्ण सफल कृति है।

नव्य बिंब विधान की दृष्टि से 'धूप के धान' की चंदरिमा कविता में माथुरजी के मन पर प्रेयसी के गोल पूनम से चेहरे का प्रभाव अधिक है।

" यह झकाझक रात
चाँद पूरा साफ
गोल पूनम सा
मांसल चीकने तन का

क्योंकि यह तो सामने ही दिख रहा है
रूक रहा है, यह नहीं अब तक हुआ
बरसों पुरानी बात, भूली याद। " [132]

पूर्णिमा को देखकर माथुरजी को अपनी प्रेयसी का सुंदर मुख पुनः पुनः याद आता है।

नव्य प्रतीक विधान की दृष्टि से कवि के 'खट्टमिठ्ठी चांदनी' यह कविता महत्वपूर्ण है। अन्य कवि के 'चाँदनी' विषयक अनेक प्रसिद्ध रचनाओं से अलग और स्वतंत्र स्थान रखती है। उदा. -

" कितना सुख पाया है
तुमसे ओ चांदनी
देह चूर रस से है
मन में है चांदनी। नजरों के रंगों ने
तन का हर रोम छुआ
उगें तुम्हारा ही पट्टरस है चाँदनी
सोंधी, मीठी, लोनी खट्मिठ्ठी चाँदनी। " [133]

माथुरजी के काव्य की चाँदनी सिर्फ रात की रोशनी नहीं है तो माथुरजी के प्रेरक-भाव स्त्रोत का सुकुमार प्रतीक है।

माथुरजी प्रयोगशील कवि होने के कारण कवि ने अपने काव्य में नवीन विषयों को भी अपनाया है। विज्ञान के नवीन अविष्कार विज्ञान के चमत्कार आदि उनके काव्य की विशेषताएँ है। रेडियम की छाया, ऐसोसियेशन्स आदि कविताएँ प्रयोगवादी पद्धति की प्रमुख कविताएँ है। देखिए -

" कुछ सुनसान दिनों की
और चाँदनी से ठण्डी-ठण्डी रातों को
पत्रों की दुनिया से भी हम दूर हुए थे
आज तुम्हारा सूना-सा संदेश मिला है
प्यार दूर का
एक सीध में बनी, खिडकियों में से होकर
कमरों का विद्युत-प्रकाश बाहर पडता था। " [134]

इसप्रकार स्पष्ट हो जाता है, कि माथुरजी नई कविता की बदलती हुई प्रवृत्तियों के साथ

आरंभ से आज तक जुडे हुअे है। आरंभ से नये प्रतीक, नये बिंब और काव्य वस्तु में भाव और शिल्प के नवीन प्रयोग करते हुअे कवि काव्य साधना में मग्न है। माथुरजी ने सब प्रकार के वादों और गुटों से बचकर कथ्य और शिल्प विधान में अभिनव प्रयोग किए है। भावों का सहो अंकर करना ही उनका प्रमुख लक्ष्य था।

नव्य ध्वनि प्रयोग :-

काव्य केवल शब्दों का व्यवस्थित रूप गठन से ही नहीं होता, अपितु अंतर्निहित भावों की ध्वन्यात्मक अभिव्यंजना होती है।

ध्वनि संबंधी कवि गिरिजाकुमार माथुर के विचार - " मेरे ध्वनि संबंधी अन्वेषणों की एक निश्चित वैचारिक पीठीका है। अतः अपनी मान्यताओं की विवेचना करने से पूर्व उक्त आधारभूमि को स्पष्ट करना आवश्यक है। 'ध्वनि' से मेरा तात्पर्य शब्दों की 'नाद-शक्ति' से है। विषय की व्यंजना अथवा काव्यगत संकेतार्थ से नहीं। साधारणतः ध्वनि का अर्थ कविता में शब्द शक्ति, व्यंजना-वक्राक्ति, अर्थ की सांकेतिकता, आदि से लिया जाता रहा है। ध्वनि या ध्वन्यार्थ के अंतर्गत रस-ध्वनि, अलंकार ध्वनि, वस्तु-ध्वनि की विवेचना शास्त्रीय पद्धति से बहुत की गयी है। " [135]

भाषागत व्यंजना के संबंध में श्री माथुरजी का विवेचन यहाँ उल्लेखनीय है। - " रोमानी कविताओं में मैंने छोटी और मीठी ध्वनिवाले बोलचाल के शब्द प्रयुक्त किये है - कहीं-कहीं नए शब्द वातावरण का ध्वनिभाव लेकर बनाए है। जैसे 'सुनसान' खंडहरों आदि उदा.- 'सूनसान' शब्द लीजिए। शून्यताः 'सूनापन', 'सूनसान' सभी शब्द उस ध्वनिभाव के साथ निर्बल प्रतीत हुए 'शून्य' में एक खोखलापन सूनापन मेंदो स्वर ध्वनियों की तेजी के बाद ही अंत की दो व्यंजन ध्वनियों से शब्द निकलते हैं - इसप्रकार 'सूनापन' शब्द का ध्वनि-भाव 'आ' 'ऊ' हो जाता है जो गहरे 'सूनसान' शब्द का यथार्थ रूप है। " [136] 'सूनसान' तथा खंडरों शब्दों को कविने वातावरण ध्वनिभाव लेकर गढा है। जैसे,

" गूँजता था सूनसान
ऊजड खंडरों में
गिरते थे पत्ते
वन-पंछी नहीं बोलते थे। " [137]

माथुरजी ने अपनी कविता में ध्वन्यर्थ-व्यंजक शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे,

" सनसनाती साँझ सूनी

वायु का कढ़ुला खनकता
झींगुरों की खंजडी पर
साँझ-सा बीहड झनकता। " 138

इसमें सनसनाती, खनकता, झनकता, आदि शब्द ध्वनिमूलक है। इससे ध्वनि की अनुभूति होती है।

माथुरजी के गीतों में काव्य तत्व के साथ संगीतमयता का स्वरूप भी मिलता है। जैसे,

" जीवन में है सुरंग सुधियाँ सुहावनी
छबियों की चित्र गंधफैली मनभावनी। " 139

गेयात्मकता का एक खुबसुरत उदाहरण -

" उडी आ रही है लहर-सी फुहारे
उमगते उरज मेघमाती भुजाएँ। " 140

कुछ रचनाओं में छंद विधान के साथ-साथ ध्वनि का ताजा प्रयोग किया है। उदा. -

" सेजो पै आ जाना निंदियाँ कुमारी
रात का आँचल आधा खिसल गया
आँखों में बोझिले सपनेलिटा जा
बातों का फूल भी हलके मसल गया। " 141

कवि ने अनेक गीतों में फैंटसी शिल्प का प्रयोग किया है। जैसे,

" पलकों से कुहू उडी
किशीमिशी अंशुकों के, कुहर रेशमी
देह की वर्तिकाएँ अवसना
थगी। " 142

इसतरह कविने अपने गीत और उसमें निहित गेयता को परंपरागत आधुनिक गीतों से अलग रखा है। तुकांत और अनुप्रास पर आधारित गीतों में गेयता का स्वरूप प्रभावकारी मिलता है। जैसे,

" फिर घुमडे वही मेघ, फिर आया याद प्यार

-- जाल के चँदोवे, साडी, कसी नीची तंग सी
बाँहों-भरी देह थी, पेट्टा की सुगंध सी। " [143]

अतः स्पष्ट होता है कि कवि माथुर जी के काव्य में नवीन ध्वनि प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है।

नव्य शब्दों का प्रयोग :-

प्रयोगवादी कवियों ने पुराने शब्द रूप में परिवर्तन करके अपने ढंग से नए शब्दों का निर्माण किया है।

गिरिजाकुमार माथुर ने ध्वनि-विन्यास की दृष्टि से कुछ शब्दों का तोड-मोडकर प्रयोग किया है। जैसे - लालिमा के लिए, ललाई या ललोई, चाँदनी के लिए चँदीली, पूर्णिमा के लिए 'पूरनिमा' आदि।

अ) " खिली चँदीली रात कि कली सुहावनी
छिटक रही है पुरनिमा की चाँदनी
नयनों में मद भरी ललोई झूलती " [144]

माथुरजी ने और भी बहुत सारे नये शब्द निर्माण किये है - जैसे - छुअन, चँदिरा, मेघरा, मेघिमा, क्वारे, मंदिर, उम्र का कटोरा, चित्रगंध, पेचरोल, सुनैली पियराना, चंदरिया, वायु का कठुला, बिकनी आदि।

'छाया मत छुना मन' कविता में स्वरचित शब्दों की भरमार है।

अ) " जीवन में है सुरंग सुधियाँ सुहावनी
छवियों की चित्रगंध फैली मनभावनी। " [145]

वैसे वैसंदर (यज्ञ की अग्नि) पंक्ति चालन (रेजीमेंटेशन) अंतिमांत (आंत्यातिक के अर्थ में) भूमानी (पृथ्वी की आभा) चंदरिमा (चंद्रमा की आभा) मटीली (मिट्टी के रंग की) समूम (अत्यंत गर्म रेगिस्तानी हवाएँ) और पेचरोज 'पेचरोल हिंदी पेच और रोल अंग्रेजी के योग से बनाया गया है।

माथुरजी ने कुछ वैज्ञानिक शब्दों का भी निर्माण किया है। ज्वाल रज (अणु-विस्फोट) नागछत्र (घूम बादल के अर्थ में)।

इस समस्त शब्दावली से यह स्पष्ट हो जाता है, कि गिरिजाकुमार गाथुर ने नये शब्दों का निर्माण करके अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है, जिससे काव्य की प्रभावोत्पादकता बढ गयी है।

संस्कृत निष्ठ भाषा प्रयोग :-

संस्कृतगर्भित भाषा और उसकी जटिलता के प्रति विरोध करते हुए भी प्रयोगवादी कवियों के काव्यों में तत्सम् शैली का रूप मिलता है। संस्कृत भाषा का प्रयोग कही सहज रूप में हुआ है, तो कही प्रयत्न साध्य भी दिखायी देता है।

गिरिजाकुमार माथुरजी की कविताओं में अभिव्यंजना को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिए संस्कृत के शब्दों का प्रयोग मिलता है। भाषा के अभिव्यक्त पक्ष को अभिव्यंजना की दृष्टि से समृद्धशाली और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए संस्कृतिनिष्ठ शब्दों का प्रयोग भी किया है। उदा.- द्विविधा, हिरव्यगर्भ, कालांतर, वर्तिका, विक्षत, निर्वासित, षडयंत्र, धर्माधता, जघन्य, वामविकृति संकल्प, शमी, शिरस्त्राण, संदली मूंद्रिका, निरावृत्त, बर्बरता, नृशंसता, संस्कृति, कर्दम, मरू निधियाँ 'गंध लेने लगी आकार' इस कविता में 'वर्तिका' शब्द का प्रयोग जैसे,

अ) " किशमिशी अंशुकों के कहर रेशमी
देह की वर्तिकाएँ अवसना थमी। " [146]

ब) " रावण पर राम की
बर्बरता - कंस पर
संस्कृति के श्याम की " [147]

क) " सीमित अस्तित्व व्योम, सीमित देशकाल
सीमित संदर्भ सभी, व्यक्ति, राष्ट्र, तर्क-जाल
शक्ति, स्वार्थ, संप्रदाय, प्रभुताओं के ललाट
सत्य नित्य जीवन है सत्य चेतना विराट। " [148]

संस्कृत के बहुत सारे शब्द माथुरजी के काव्य में प्रयुक्त हुअे है। जैसे - भूमध्यसिंधु, धरा, महाधातु, विश्रांत, प्रभंजन, प्रश्नसिंह, एकांत, विद्युत, स्तम्थ, सहस्त्र, रंजित, रक्तिभ फच्छल, अग्निशिखा, विश्वसभ्यता, पशुत्व, मिथ्या, संघर्ष, प्रेत, शाप, जनार्दन, स्वस्थ, स्नेह दीपित वेदांत, युद्ध, निंदियाँ, कल्पना, चक वक्तव्य, आस्था, निष्ठुर, कोटि दीप पलाश, रहस्य गर्भा, यंत्रणा, दीपित, सुरभित, द्विविधा, भरत आदि

प्रकृति शिल्प :-

संख्या की दृष्टि से गिरिजाकुमार माथुरजी की कविताएँ प्रकृति चित्रण से अधिक संबंधित है। 'ढाकवनी', 'धूप का ऊन', 'सावन की रात', 'वसंत की रात', 'सूरजा का पहिया', 'शाप की धूप' रूप विभ्रमा चाँदनी, चाँदनी बिखरी हुई, बरकुल, चिलका झील कोणार्क पर तीसरा पहर, लाल गुलाबों की

शाम, कातिम चाँद की रात आदि माथुर की प्रकृति चित्रण संबंधी प्रसिद्ध कविताएँ प्रकृति की उन्होंने आलंबन, उद्दीपन, आलंकारिक प्रतीकात्म बिंब उपदेशात्मक और मानवीकरण आदि नाना रीतियों से चित्रण किया है।

माथुरजी के काव्य में प्रकृतिपरक उपमान विधान भी हुआ है, जो कल्पना प्रवण होने पर छायावादियों के समान भावसंकुल नहीं है। जैसे -

" काले अगरू से उठे आज बादल
ये मिट्टी की गंध सी सौंधी हवाएँ
ये जामुन के रंग सी फुहारे नीली घटाएँ
उडी जा रही है, लहर-सी फुहारें
उमगते उरज मेघमाती भुजाएँ
खुली फूल बाँहे हटे लाज आँचल
नहाकर वनस्पति हुई ऋतुमती-सी
नितम्बिनि धरान्यों कुँवरि रसवती-सी। " [149]

माथुरजी के काव्य में प्रकृतिपरक बिंब दिखायी देता है 'सावन की रात' के कविता में वातावरण का बिंब रोचक एवं स्वाभाविक हुआ है।

" नीली बिजली मेघोवालो
झींगुर की गुंजार
धुधभरा साँवर सूनापन
हवा लहरियोंदार
घन घुमडन भुज बंधन के उन्माद-सी
बढती आती रात तुम्हारी याद-सी
रात रसीली, बँदोवाली, जैसे देह रसाल। " [150]

माथुरजी ने अपनी उक्तियों में जडतामय वातावरण की सृष्टि के लिए भी तदनुरूप प्रकृति का गतिहीन रूप अंकित किया है, और मनुष्य की थकान भरी मनोवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए प्राकृतिक प्रतीकों का सहाया लिया है।

" दिन भर थक कर दफ्तर में सूरज डूबा
अलमारियों, दरवाजों में सोया अजियाला
गोधूली हो गई धूल से ढकी फाईलों के पन्नों पर
कुब्रो-सा सुनसान समाया। " [151]

कवि माथुरजी ने 'वसंत एक प्रगीत' नामक कविता में कवि ने प्राकृतिक सौंदर्य द्वारा अंग्रेजी छंद ओडा का प्रयोग किया है। जैसे,

" पिया आया वसंत फूल रस के भरे
फूल रस के भरे
गंध जूडे कसे
चली पियरी बतास
छायी मन के दिगंत
अमलतासी उजास
रोगतन गुलगुहर। " ।52

अलंकारों में भी बहुत ही स्वाभाविक ऐसा प्राकृतिक सौंदर्य का प्रयोग हुआ है।

अ) " सेमल की गरमीली रूई समान जाडों की धूप" ।53

ब) " सर्दियों की धूप उजले उनकी मृदुशाल
पहिने मुँडेरों पर ठहर कर झंझरियों से झाँकती है। " ।54

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि माथुर को प्रकृति चित्रण में बहुत ही सफलता मिली है। उनकी कृतियों में प्रकृति के अनेक सुंदर कलापूर्ण और हृदयग्राही चित्र अंकित है।

शैली वैविध्य :-

प्रयोगवादी कवियों में गिरिजाकुमार माथुरजी ही एकमात्र ऐसे कवि है, जिनके काव्य शैली में विविध रूप दिखायी देते है। उनके काव्य में छायावादी गीत शैली से लेकर आधुनिकतम पत्र, संलाप एवं एकालाप शैली तक के दर्शन होते है, जिसमें उनकी उच्च प्रतिभा और भावबोध की सूक्ष्मता मिलती है।

नगरीय बोध के कवि होने पर भी माथुरजी ने लोकगीतों तक की धुनों का सुंदर प्रयोग किया है। उनके काव्य में पाये जानेवाले काव्य-रूप इसतरह है। -

गीत :-

गीत के संबंध में माथुरजी का विचार है - " मैं गीत को अनुभूति का प्रतीक चित्र मानता हूँ। अभिधंमूलक अभिव्यंजना के स्थान पर सांकेतिकता की सबसे अधिक आवश्यकता गीत में होती है यह मेरी स्यातना है। " ।55

गीतों की परंपरागत टेकनीक में भी माथुरजी ने परिवर्तन किया है। उन्होंने सब जगह चार पंक्तियों वाले चरणों का इस्तेमाल नही किया। भावाभिव्यंजन की आवश्यकतानुसार उन्होंने गीत के बीच में अतुकांत पंक्तियों का प्रयोग भी किया है। 'हेमंती पूनों' का एक उदाहरण -

" आज जीवन चाँदनी रूठी हुई है
आयु छबि शत खंड है टूटी हुई है
जिंदगी के चाँद का ठहराव कम है
आइनों की पाँत यों फूटी हुई है
पूर्णिमा भी इसलिए
लगती मटीली
चाँदनी फैली हुई है
ओस नीली। " 156

प्रगीत (लिरिक) :-

प्रगीतों का उत्कर्ष छयावादी युगों में सर्वाधिक मिलता है। इसमें विभिन्न अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की जाती है। भावों की अन्विति प्रगीत का मुख्य तत्व है। इसप्रकार की प्रगीतात्मक कविताएँ माथुरजी की प्रथम काव्य संग्रह में 'मंजीर' में दिखायी देती है। संगीतमय शब्दों में जिसमें प्रभावोत्पादकता के साथ संगीतात्मकता भी है। संगीतमय शब्दों में विविध मनोदशाओं की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति मिलती है। उदा. -

" तुमने प्यार नहीं पहचाना
तुमने जिसको समझा गागर
आग भरा वह मेरा सागर
वे मेरे मोती थे जिनको
तुमने समझ लिया था पत्थर
उन सफेद हलके फूलों को
तुमने छोडा धूल बताकर। " 157

मोनो लॉग या एकालाप :-

शैली के इस रूप में कविता में भाषण निहित रहता है। और श्रोता मौन रहता है। इसप्रकार की कविता में संवादों और घटनाओं का अभाव रहने पर भी चरित्र विशेष के मनोविश्लेषण संभावनाएँ प्रस्तुत रहती है। इस दृष्टि से माथुरजी की कविता 'याज्ञवलक्य और गार्गी' में

एकालाप महत्वपूर्ण है। जिसमें अव्यक्त, अक्षर, निर्गुण, ईश्वर को 'अणु' शक्ति के प्रतीक रूप में प्रस्तुत हुआ है। जैसे,

" प्रश्न मत पूछो
निरूत्तर हूँ
क्योंकि अब अव्यक्त अक्षर
सूक्ष्म निर्गुण तत्व में
जीवित धरा में
रण ठना है
हो गया है किशन अणु का
परम ब्रम्हा, अनादि मनु का। " [158]

डायलॉग अथवा संलापशैली :-

इस काव्य-रूपक अंतर्गत दो पात्रों आदि के मध्य संलाप होने के कारण नाटकीयता की नियोजना की जाती है। किंतु काव्यगत संवाद नाटक के संवाद से भिन्न होते है। माथुरजी ने इस संलाप शैली का उपयोग 'देह की आवाज' कविता में किया है। इसमें शरीर और मन के बीच छंदमय वार्तालाप है। मन इस भौतिक शरीरकी व्यर्थता और आत्मा की महत्ता को प्रतिपादित करता है। किंतु शरीर का कहना है कि बुद्धि, ज्ञान और आत्मा देह तेज की ही भावकृति है। देह से ही मन का मयूर खिलता है। उदा.-

" मन ने शरीर से पूछा
क्यों है इतना आकर्षण
रसमय चुंबकमय कसी देह का
पशुओं जैसे सब काम
देह करती है
छिन भरी जन्मती, जीती है, मरती है।
उत्तर में फिर आवाज
देह की बोली
थे बुद्धि-ज्ञान, आत्मा की सभी आदितियाँ
है देह तेज की ज्यातित भावकृतियाँ
खिलत है देह बीज से
पंकज मन का। " [159]

काव्य रूपक :-

माथुरजी ने 'इंदुमती' काव्य-रूपक की सृष्टि की है, प्रयोगवादी कविताओं में यह नया प्रयोग है। 'इंदुमती' काव्य रूपक में दो ही पात्र है। इंदुमती और सुनंदा तथा घटना प्रधान है, इंदुमती और अज राजा का विवाह काव्य रूपक के प्रारंभ में ही रघुकुल की उज्जवल गाथा का संक्षेप में वर्णन किया है।

" सूरज के आलोक पंथ सी
रघुकुल की गाथा उज्वल है
छंदो में ज्यों गूँज ओइम् की
ज्यों हविष्य में गंगाजल है
जिनके यश के यज्ञ-धूम से
निर्मल सौ-सौ शरद हुए है
लेकर तेज अंश दिनकर से
नान्दिनेय रघु से अज जन्में। " [60]

लोकगीतों की धुनों पर आधारित गीत :-

प्रयोगवादी कविता में जनसामान्य की बोलचाल की भाषा को अधिकाधिक बढावा मिला है, जिसके कारण लोकगीतों की धुनों पर आधारित गीतों की रचना भी प्रारंभ हुई है। इसप्रकार के प्रयोग माथुरजी के रचनाओं में भी मिलते हैं। गुजराती लोक नृत्य 'गरबा के साथ गाये जाने वाले गीत' के आधार पर उन्होंने - चाँदनी गरबा का छंद एक गुजराती लोकगीत से लिया है।

" उभरे रोएँ छुवा गयी है चाँदनी
सींग नुकीले चुभा गयी है चाँदनी
चंचल नयन गोरी हिरनी चाँदनी। " [61]

समाज यथार्थ शिल्प :-

इस शिल्प सर्वप्रथम प्रयोगकर्ता ही माथुरजी है। कवि के अनुसार 'ढाकवनी' में जहाँ एक और वातावरण निर्माण के लिए जनपदीय (बुंदलखंड) उपमान प्रतीक और शब्दयोजना का आधार लिया है। वहाँ दूसरी ओर समाज-यथार्थ चित्र के शिल्प का प्रथम बार उपयोग किया है। ग्रामीण जीवन का अभावग्रस्त यथार्थ चित्र माथुरजीने 'ढाकवनी' में प्रस्तुत किया है। जैसे,

" भूख की मनहूस छाया
साँस लेता है बियाबाँ

डोल जाती सुन्न छाँह
हर तरफ गुपचुप खडी है
जनपदों की आत्माएँ। " [162]

उपर्युक्त काव्यशैलियों के अतिरिक्त कवि ने 'देह की दूरीयाँ' कविता में कालविमा (टाम-डायमेंशन) की एक अस्पर्शित अनुभूति दिखायी देती है।

" निर्जन दूरियों के
ठोस दर्पणों में चलते हुए
सहसा मेरी एक देह
उग कर एक बिंब पर
तीन अजनबी साथ चलने लगे
अलग दिशाओं में
और यह न ज्ञान हुआ
इनमें कौन मेरा है। [163]

इसके अतिरिक्त गिरिजाकुमार माथुरजी ने नई लंबी कविताओं की रचना भी की है। यह बडी कविताएँ माथुरजी के काव्य की श्रेष्ठ उपलब्धि है। लगभग सभी काव्यसंग्रहों में यह उपलब्धि दिखार्यी देती है। जैसे 'मंजीर' की 'जौहर की धूल', 'प्रेम से पहले', 'तूफानों की छाया', 'विजय' आदि 'धूप के धान' की एशिया का जागरण, 'पहिए', [redacted] 'देह की आवाज', 'धरादीप', 'शिला पंख चमकीले' की 'तूफान एक्सप्रेस की रात', 'हब्श [redacted] आज तक विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ कविताएँ जैसे 'इतिहास के जरहि से' 'एक अधनंगा आदमी', विक्षिप्तों का जुलुस' तथा 'निर्णय का क्षण' आदि तथा नयी कविताएँ जो पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थी दस-दस पृष्ठ तक की है, माथुरजी की लंबी कविताएँ यह हिंदी कविता को उनकी अमूल्य देन है, जो उनके काव्यशैली एक रूप प्रस्तुत करती है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि गिरिजाकुमार माथुर की काव्य में विविध शैलीयों का प्रयोग हुआ है। नवीन शिल्प-विधान के क्षेत्र में माथुरजी की देन है अविस्मरणीय है प्राचीन काव्य-रूपों से लेकर नव्यतम काव्यशैली का प्रयोग माथुरजी ने अपने काव्य में किया है, काव्य क्षेत्र में इतना वैविध्य शायद ही अन्य किसी नये काव्य में मिलती है।

संक्षेप :-

इसप्रकार शिल्पविधान की प्रौढता की दृष्टि से माथुरजी का काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय

है। माथुरजी के भाव और विचारपक्ष की तरह कला और शिल्प पक्ष भी विकासशील है। माथुरजी के काव्य में प्रतीकों की विशेषता है उन्होंने प्रतीकों के नवनिर्माण द्वारा उनके काव्य की शोभा बढ गयी है। तो काव्य को गुरूता, गंभीरता, कमनीयता, मधुरता बिंबों के प्रयोग के कारण आयी है, तो उनके काव्य में छंद संबंधी नवीनता सर्वाधिक उपलब्ध है, उपमानों तथा विशेषताओं के साथ-साथ अलंकारों का भी प्रयोग किया है जो भावोत्कर्ष में अत्यंत सहाय्यक हुए है। इसके साथ ही जनभाषा का यथार्थ प्रयोग मुहावरे लोकोक्ति, नव्य ध्वनि प्रयोग और नये शब्दों का निर्माण कर के अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है, जिससे उनके काव्य की प्रभावोत्पादकता बढ गयी है।

संदर्भ

अध्याय - 5

1) गिरिजाकुमार माथुर और उनका काव्य पृ. 141
2) नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ पृ. 132
3) वही 133
4) धूप के धान - निवेदन पृ. 7
5) वही पृ. 6
6) नयी कविता : सिमाएँ और संभवनाएँ पृ. 126
7) वही पृ. 60
8) एक अधनंगा आदमी पृ. 4
9) नयी कविता सिमाएँ और संभवनाएँ पृ. 106
10) गिरिजाकुमार माथुर और उनका काव्य पृ. 147
11) धूप के धान पृ. 1, 2
12) वही पृ. 1, 2
13) वही पृ. 9
14) वही पृ. 35 , 36
15) तार-सप्तक पृ. 142
16) धूप के धान पृ. 47
17) वही पृ. 21, 22
18) वही पृ. 21
19) वही पृ . 15, 16
20) मंजीर पृ. 22, 23
21) तार-सप्तक पृ. 127
22) वही पृ. 1322
23) वही पृ. 138
24) छाया मत छुना मन पृ. 51
25) वही पृ. 45
26) तार-सप्तक वक्तव्य माथुर पृ. 124
27) हिंदी के लोकप्रिय कवि - गिरिजाकुमार माथुर पृ. 29
28) तार-सप्तक वक्तव्य - माथुर पृ. 125
29) मंजीर पृ. 7
30) वही पृ. 41
31) तार-सप्तक पृ. 130
32) धूप के धान पृ. 55
33) हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधी कवि - द्वारिका प्रसाद पृ. 513
34) वही पृ. 514
35) वही पृ. 515
36) वही पृ. 514
37) आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ पृ. 135

38) काव्य शास्त्र डॉ. भगिरथ मिश्र पृ. 294
39) धूप के धान - माथुर - भूमिका पृ. 13, 7
40) नाश और निर्माण पृ. 127
41) वही पृ. 112
42) तार-सप्तक पृ. 146
43) नाश और निर्माण पृ. 27
44) तार-सप्तक पृ. 147
45) वही पृ. 147
46) छाया मत छूना मन पृ. 51
47) मंजीर पृ. 11
48) धूप के धान पृ. 90
49) नाश और निर्माण पृ. 18
50) तार-सप्तक पृ. 140
51) धूप के धान पृ. 135
52) वही पृ. 46, 47
53) वही पृ. 17, 18
54) वही पृ. 73
55) तार-सप्तक पृ. 129
56) वही पृ. 130
57) मंजीर पृ. 41
58) छाया मत छूना मन पृ. 51
59) वही पृ. 28
60) वही पृ. 58
61) वही पृ. 58
62) नया हिंदी काव्य पृ. 343
63) रस मिमांसा पृ. 252
64) तार-सप्तक पृ. 128
65) धूप के धान पृ. 63
66) वही पृ. 89
67) छाया मत छूना मन पृ. 65
68) धूप के धान पृ. 89
69) वही पृ. 22, 23
70) तार-सप्तक पृ. 146
71) धूप के धान पृ. 67
72) वही पृ. 4, 5
73) छाया मत छूना मन पृ. 46
74) तार-सप्तक वक्तव्य गिरिजाकुमार पृ. 124
75) वही पृ. 127
76) छाया मत छूना मन पृ. 33
77) तार-सप्तक पृ. 132

78) नाश और निर्माण पृ. 13
79) धूप के धान पृ. 30
80) धूप के धान पृ. 91, 92
81) तार-सप्तक पृ. 147
82) धूप के धान पृ. 134
83) नाश और निर्माण पृ. 17
84) धूप के धान पृ. 67
85) वही पृ. 18
86) वही पृ. 51
87) नाश और निर्माण पृ. 94
88) छाया मत छूना मन पृ. 25
89) वही पृ. 65
90) शिला पंख चमकीले पृ. 17
91) आ. हिंदी काव्य की प्रवृत्तियाँ पृ. 135
92) नयी कविता का स्वर और विकास पृ. 114
93) तार-सप्तक वक्तव्य - माथुरजी पृ. 125
94) नया हिंदी काव्य पृ. 358
95) तार-सप्तक पृ. 127
96) गिरिजाकुमार माथुर ओर उनका काव्य पृ. 8
97) मंजीर पृ. 14
98) धूप के धान पृ. 76
99) वही पृ. 74
100) वही पृ. 67
101) वही पृ. 24
102) नया हिंदी काव्य पृ. 368, 70
103) मंजीर पृ. 28
104) शिला पंख चमकीले पृ. 37
105) धूप के धान पृ. 23
106) नाश और निर्माण पृ. 37
107) धूप के धान पृ. 5
108) वही पृ. 59
109) शिला पंख चमकीले पृ. 36
110) तार-सप्तक पृ. 130
111) धूप के धान पृ. 82
112) वह पृ. 37
113) नाश और निर्माण पृ. 93
114) धूप के धान पृ. 114
115) छाया मत छूना मन पृ. 8
116) धूप के धान पृ. 1
117) वही पृ. 8
118) वही पृ. 35

119)वही पृ. 92
120) छाया मत छूना मन पृ. 38
121) धूप के धान पृ. 78
122) छाया मत छूना मन पृ. 65
123) वही पृ. 65
124) धूप के धान पृ. 89
125) वही पृ. 91, 92
126) शिला पंख चमकीले पृ. 3
127) धूप के धान पृ. 48
128) तार-सप्तक पृ. 129
129) वही पृ. 129
130) धूप के धान पृ. 52, 53
131) वही पृ. 21
132) वही पृ. 15
133) वही पृ. 88
134) छाया मत छूना मन पृ. 70
135) तार-सप्तक पृ. 168
136) नयी कविता सी. और संभवनाएँ पृ. 20
137) तार-सप्तक - वक्तव्य - माथुर 124, 125
138) वही पृ. 132
139) धूप के धान पृ. 132
140) वही पृ. 89
141) छाया मत छूना मन पृ. 13
142) वही पृ. 27
143) वही पृ. 17
144) वही पृ. 15
145) तार-सप्तक पृ. 177
146) छाया मत छूना मन पृ. 11
147) वही पृ. 17
148) तार-सप्तक पृ. 173
149) वही पृ. 168
150) धूप के धान पृ. 37
151) वही पृ. 102
152) नाश और निर्माण पृ. 24
153) छाया मत छूना मन पृ. 33
154) वही पृ. 23
155) नाश और निर्माण पृ. 18
156) छाया मत छूना मन पृ. 40
157) धूप के धान पृ. 73
158) वही पृ. 97, 99
159) वही पृ. 114
160) वही पृ. 67
161) वही पृ. 91, 92 162) तार-सप्तक पृ. 160